

***ANCIENT & MEDIEVAL HINDI
POETRY, PROSODY & POETICS***

CORE COURSE

For

BA HINDI

V SEMESTER

(2011 Admission)



UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

CALICUT UNIVERSITY PO, MALAPPURAM, KERALA, INDIA - 673 635



UNIVERSITY OF CALICUT

SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION

BA HINDI

V SEMESTER

CORE COURSE

ANCIENT AND MEDIEVAL HINDI POETRY , PROSODY & POETICS

Prepared by : Dr. Shibi C,
Assistant Professor,
Karmal College, Mala,
Thrissur

Scrutinized by: Dr. Pavor Saseendran,
Emeritus Professor,
Govt. Arts & Science college,
Calicut.

Layout: Computer Section, SDE

(c)
Reserved

<i>CONTENTS</i>		<i>PAGE NO</i>
MODULE I	ANCIENT HINDI POETRY - SELECTED CHANDAS FROM ANCIENT HINDI POETRY	5
MODULE II	MEDIEVAL HINDI POETRY - SELECTED DOHAS AND PADAS	13
MODULE III	ALANKARAS AND CHANDAS - DEFINITION AND USAGE	35
MODULE IV	SABDASAKTHI - DEFINITION AND USAGE	51

MODULE I

ANCIENT HINDI POETRY - SELECTED CHANDAS FROM ANCIENT HINDI POETRY

पृथ्वीराज रासो एवं चंदबरदाई

‘पृथ्वीराज रासो’ महाकाव्य के रचयिता चंदबरदाई महाराज पृथ्वीराज चौहान का बालसखा तथा कवि थे । कहा जाता है कि इनके जन्म एवं मृत्यु दोनों ही साथ-साथ हुई थी । अपने जीवन काल में इस महाकाव्य को पूरा न कर पाने के कारण चन्दबरदाई का पुत्र जल्हण पर दायित्व सौंप गया, और जल्हण ने इस रचना की पूर्णता दी । पृथ्वीराज रासो महाराज पृथ्वीराज चौहान के उदात्त शौर्य की अमर गाथा है । इस महाकाव्य की केन्द्रीय संवेदना वीर रस की है, यद्यपि इसमें शृंगार रस की बहुलता भी देखी जाती है ।

कयमासवध इस महाकाव्य का एक महत्वपूर्ण खंड है । जयचंद की पुत्री संयोगिता के विरह में पृथ्वीराज व्याकुल होकर वन में आखेट करके अपना मन बहलाता है, और दिल्ली का राज्य अपने पराक्रमी सेनापति एवं अमात्य कयमास को सौंप देते हैं । कयमास राज्यभोग के उन्मुक्त एवं अंकुश विहीन वातावरण में राजदासी करनाटी के प्रेम में फँसकर रात्रि विश्राम उसके अन्तःपुर में करता था । पटरानी परमारिनी को एक ताम्बूलवाहिनी द्वारा सूचित किए जाने पर वह पृथ्वीराज को बुलवाती है, और सारे तथ्यों को सूचित करती है । कयमास के कृत्यों से कुपित होकर पृथ्वीराज उसका वध करता है। कयमास वध खंड अत्यंत काव्यात्मक तथा काव्य रचना की ललित रूढ़ियों से सिद्ध प्रसंग है ।

पृथ्वीराज रासो

दोहरा _____

- (१) तिहि तप आष्टेक भमइ थिर न रहइ चहुवान ।
वर प्रधान जुगियि पुरह घर रषाइ परवान ॥

शब्दार्थ

_____ तिहि तप - संयोगिता की विरह अग्नि में, आष्टेक - आखेट करनेवाला पृथ्वीराज, भमई - घूमता रहता था, वर - श्रेष्ठ, प्रधान - प्रधान अमात्य, जुगियि पुरइ - योगिनी पुर (दिल्ली), परवान - प्रमाण (अधिकार रूप से)

भावार्थ

_____ जयचंद्र की पुत्री संयोगिता के विरह तप से पीड़ित पृथ्वीराज आखेट में घूमता रहता था और एक स्थान पर स्थिर भी नहीं रह पाता था । प्रधान अमात्य (मंत्री) कयमास उसकी अनुपस्थिति में अधिकार रूप से योगिनीपुर (दिल्ली) नगर की रक्षा कर रहा था ।

विशेष – कवि इस छन्द में संयोगिता के विरह में पीड़ित पृथ्वीराज चौहान की दशा का वर्णन किया है ।

प्रस्तुत पंक्तियाँ दोहरा छन्द में है । दोहरा छन्द दोहा का ही प्राचीन रूप है । इसमें २४ मात्राएँ होती हैं ।

- (२) राजं जा प्रतिमा स चीनधर्मा रामा रमे सा मतीन् ।
नितीरे कर काम वामं वसना संगेन सेज्या गति ।
अंधेरन जलेन छिन्न क्षितपा तारानि धारा रत ।
सा मंत्री कयमास काम अंधा देवी विचित्रा गति ।

शब्दार्थ

_____ प्रतिमा - प्रतिनिधि, चीन धर्मा - नीच स्वभाववाला, रामा - नारी, रमे - रमण करता था, नितीरे - बिना बाण के, काम वाम - रति का पति कामदेव, अंधारेण - अंधकार से, छितिया - पृथ्वी, तारानि धारा रत - तारे वर्षा की जलधारा में डूबे थे, देवी विचित्रा गति - दैव की विचित्र गति होती है ।

भावार्थ

_____ कवि चंद्रबरदाई कहते हैं कि, वह कयमास राजा पृथ्वीराज चौहान की प्रतिभा स्वरूप (प्रतिनिधि स्वरूप) था, किन्तु वह नीच आचरण का (कामासक्त) नारियों के रमण में अपना मन लगाए रहता था । बिना बाण के वह रति के पति कामदेव के वश में रहकर नारियों की शय्या पर विहार करने लगा । उस समय वर्षा के अंधकार से पृथ्वी घिरी थी और वर्षा की उस धारा में तारागण भी छिप गए थे । दैव की विचित्र गति हैं, ऐसे समय में वह मंत्री कयमास कामान्ध होउठा ।

विशेष – कवि वर्षा के उद्दीपक वातावरण के द्वारा काम पीड़ित कयमास की कामान्धता की ओर संकेत करता है ।

साटिका छन्द संस्कृत के शर्दूल विक्रीडित का विकृत रूप है । इस छन्द के प्रत्येक चरण में २३ वर्ण होते हैं ।

- (३) करनाटी दासी सुबन रजनी अथि अवास ।
काम मुच्छि कयमास तनु दिट्ठि लिंगी तास ॥

शब्दार्थ

सुबन - स्वर्णिम वर्ण की, अथ्थी - थी, मुच्छि - मूर्च्छित, दिट्ठि - दृष्टि, विलग्गी - लगी
भावार्थ

कवि करनाटी दासी के प्रति कयमास की संसक्ति का चित्रण कहता हुआ कहता है कि, सोने जैसे रंगवाली, उस राजभवन में करनाटी दासी रात्रि में निवास करती थी । काम से मूर्च्छित कयमास की दृष्टि उस पर लगी ।

विशेष – दोहा (दोहरा) छन्द है ।

- (४) चलउ मुहिल कयमास रयणि नट्ठी जाम इक्कत ।
तंबोलय साषि साषि पट्ट रगिनीयनिसि संकित ।
दीपक जरडु संकूरि भमिअ रतिअ पति अंतह ।
अति सरोष भरि भूज लिहि दीय दासी करि कंतट ।
पल्लाणि अस्व तंषिन षरीय अवधि दीय इअ दुहु घरीय कट्टं ।
पल गयण प्रयण बनि संचरिअ नयन सयन प्रथिराज जहं ॥

शब्दार्थ

मुहिल - महल, रमणि - रात्रि, जाम - याम (प्रहर), इक्कत - एक, तंबोलय - पान ले जानेवाली दासी, साषि - साक्षी, पट्ट रगिनिअ - पटरानी (बडी रानी), संकूरि - मंद प्रकाश में, प्रयण - प्रकीर्ण, सयन,सैन - संकेत, घरिय - घडी

भावार्थ

रात्रि का एक प्रहर व्यतित हो जाने पर प्रधानमंत्री कयमदास करनाटी दासी के पास गया। रात्रि में ताम्बूलवाहिनी (पान ले जानेवाली) दासी ने इस कार्य से शंकित होकर पटरानी से शिकायत की कि करनाटी के अन्तःपुर में कयमास मंत्री भ्रमण कर रहा है । और उसका (अन्तःपुर का) दीपक मद्धिम होकर जल रहा है । इसे सुनकर अत्यधिक क्रोध से परिपूर्ण पटरानी ने स्वामी पृथ्वीराज चौहान को भोजपत्र पर लिखकर एक पत्र दिया ।

उसे उसी क्षण घोड़े को पलान कर पृथ्वीराज चौहान को बुलाने के लिए दो घड़ी का समय दिया । हाथियों से भरा वह (भयानक) वन जहाँ पृथ्वीराज रात्रि निवास कर रहे थे, वह दासी, जितना समय नेत्रों से संकेत मात्र में लगता है, उतने ही पल के बीच उपस्थित हो गई ।

विशेष

(१) अतिशयोक्ति अलंकार के माध्यम से कवि अत्यन्त वैचित्र्य के साथ दासी की शिकायत तथा पृथ्वीराज चौहान के पास पहुँचने का वर्णन करता है। अन्तःपुर में रतिकाल का चित्रण कवि 'दीप के मंद' होने के समय से कर रहा है। नेतों के संकेत करने में जितना समय लगता है, उतनी ही देर में ताम्बूलवाहिनी दासी का पृथ्वीराज के पास पहुँचना चपलातिशयोक्ति है। इस छन्द में काव्योक्तियों का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

छन्द का प्रयोग जो छप्पय छन्द है जिसे आदिकाल में 'कवित्त' के नाम से पुकारा गया है। इसमें २२, २३ मात्राओं के विराम से २४ मात्राओं के दो रोला छन्द तथा २५-२३ के विराम से अंत में एक उल्लाला छन्द होता है। यह एक प्रकार का मिश्रित छन्द है।

(५) भूकंपं जयचन्द्र राय कटके शंकापि न ग्यायते ।
सं साहिस्स सहाबसाहि सकलं इच्छामि युद्धाङ्गने ।
सिद्धं चालूक चाङ्ग मंत्र गहने दूरे स विस्वासरे ।
अग्यानं चहुआन जान रहियं दैयोग्पि रक्षा करे ॥

शब्दार्थ

कटके - सेना, ग्यायते - प्रतीत होता था, साहिस्स - साहसपूर्वक, सहाबसाहि - शहाबुद्दीन गोरी, चालूक राङ्ग - चालूक्य राय, विश्वासरे - विश्वासर प्रदेश, दैयोग्पि - दैव ही उसकी रक्षा करे भावार्थ

पृथ्वीराज के पराक्रम की ओर संकेत करता हुआ कवि चंदबरदाई कहता है कि - राजा जयचंद की सेना के प्रयाण से पृथ्वी काँपती है, फिर भी, पृथ्वीराज चौहान (उसकी) लेशमात्र चिंता न करता था। उससे अत्यंत साहसपूर्वक उत्साह से शहाबुद्दीन गोरी ने युद्ध किया था। कयमास मंत्री ने जब सिद्ध चालूक्य को पकड़ा था, तब वह दूर विश्वानर में था (जाने की भी आवश्यकता नहीं समझी थी)। कयमास को पृथ्वीराज की शक्ति और आत्मविश्वास का पता नहीं था। वह अज्ञानी मंत्री पृथ्वीराज चौहान को न समझ पाया। कवि कहते हैं कि दैव ही उस मंत्री की रक्षा करें।

विशेष

सामान्य सिद्धान्त वाक्य 'दैव ही उसकी रक्षा करें' समर्थन के लिए है, अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है। युद्ध वर्णन की परिपाटी के अनुकूल पृथ्वीराज के अतिशयित शौर्यका यहाँ चित्रण किया गया है।

प्रत्येक छन्द में २९ वर्ण वाले साटिका छन्द (शर्दूलविक्रीडित) के द्वारा यह वर्णित है।

विद्यापति

आदिकालीन हिन्दी कविता में कृष्ण लीला के अमर गायक के रूप में विद्यापति जाना जाता है । वे राजा शिवसिंह के आश्रित कवि तथा शिव, शक्ति एवं विष्णु के अनन्य भक्त थे । उनके प्रमुख ग्रंथ हैं – कीर्तिलता, कीर्तिपताका, पुरुष परीक्षा, भू परिक्रमा, गंगा वाक्यावली तथा पदावली आदि । उनकी पदावली जो विद्यापति पदावली के नाम से हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध हैं ।

विद्यापति पदावली का मूल विषय राधा-कृष्ण की प्रणय कथा है । श्रीकृष्ण की अपूर्वता के प्रति आकर्षित राधा अपने रूप सौन्दर्य से कृष्ण को विवश बना देती है । विद्यापति राधा के प्रणय, उसकी लज्जा, उसके स्नेह, उसके मान, उसके राग, उसके अनुराग का अद्भुत चित्रण इन पदों में करते हैं । विद्यापति प्रणय तथा श्रृंगार के अद्भुत कवि हैं । विद्यापति का बारहमासा वर्णन विरह श्रृंगार की परिपाटी के अनुसार हुआ है । यह आषाढ़ वर्णन से प्रारंभ होकर श्रावण मास में समाप्त होता है ।

विद्यापति पदावली के पद उनकी राधा-कृष्ण प्रणय कथा की अमर धरोहर के साक्ष्य हैं । राधा का कृष्ण के प्रति और कृष्ण का राधा के प्रति जो प्रणय अनन्यता है, वह इन पदों में प्रतीक रूप में, वर्तमान है ।

(१) सरस बसंत समय भल पाओल,
दखिन पवन बह धीरे ॥
सपनेहु रूप बचन एक भाखिए,
मुख सो दूरि करु चीरे ॥
तोहर बदन सम चांन होअथि नहिं,
जाइयो जतन बिहि देला ॥
कए बार काटि बनाओल नव कए,
तइयो तुलित नहिं भेला ॥
लोचन तुअ कमल नहिं भए एक,
से जग के नहिं जाने ॥
से फेरि जाए नुकेलाइ जलमय,
पंकज निज अपमाने ॥
भनइ विद्यापति सुनु वर यौवति,
ई सब लछमी समाने ॥
राजा सिवसिंघ रूपन रायन,
लखिमा दे पति भाने ॥

शब्दार्थ

चान - चन्द्रमा, होअधि नहिं - नहीं है, तुलित - उपमित समान, जतन - यत्न,
नुकलोई - छिपे

भावार्थ

राधा के सौन्दर्य का चित्रण करता हुआ कवि कहता है कि - आनन्ददायी वसन्त ऋतु का समय है, दखिनाई धीरे-धीरे बह रही है । ऐसे समय में यह कहना है कि है सुन्दरी ! अपने मुख के ऊपर से यह वस्त्र हटा लो ।

तुम्हारे मुख के सदृश चन्द्रमा नहीं हो सकता, विधाता ने चन्द्रमा को अनेक-अनेक बार संशोधित करके उसे नया-नया स्वरूप दिया, फिर भी, वह चन्द्रमा उससे उपमित नहीं हो सका । तुम्हारे नेत्रों की समता कमल नहीं प्राप्त कर सका है, वह संसार में कौन नहीं जानता ? वह (पंकज बनकर) इसलिए अपमान के भय से जलयुक्त पंक में जा छिपा । विद्यापति कहते हैं कि श्रेष्ठ युवती राधा सुनो । संसार में संपूर्ण सुन्दरताएँ तो लक्ष्मी की तरह हैं, जबकि तुम हज़ार-हज़ार लक्ष्मियों से भी सुन्दर हो । यह बात राजा रूपनारायण शिव सिंह और उनकी पत्नी लक्ष्मीदेवी समझती हैं ।

विशेष – यह पद में अतिशयोक्ति तथा उपमा अलंकार है ।

(२) बिरह ब्याकुल बकुल तरुतर, पेखल नंद-कुमार रे ।
नील नीरज सयन सएँ सखि, दरह नीर अपार रे ॥
पेखि मलयज - पंक मृगमद, तामरस घनसाररे ॥
निजि पानि पल्लव-मूँदि लोचन, धरनि पडु असँभार रे ॥
बहइ मंद सुगंधसीतल, मंद मलय समीर रे ॥
जनि प्रलय कालक प्रबल पावक, दहइ सून शरीर रे ॥
मान मनि तजि सुदरि चलूँ जहँ, राए रसिक सुजान रे ॥
सुखद स्तुति अति सरस दँडक, कवि विद्यापति भान रे ॥

शब्दार्थ

बकुल तरुवर - मौलश्री का वृक्ष, नीरज - कमल, फनसार - कपूर, वेपथ - कथा, सून - शून्य,
खिति - पृथ्वी

भावार्थ

राधा मान किए बैठी है और कृष्ण की वियोग पीड़ा राधा के बिना बढ़ती जाती है । उनकी पीड़ा

तथा दुःख का वर्णन करती हुई दूती राधा को समझाकर कहती है – है राधा ! मैंने नन्दकुमार श्री कृष्ण को विरह से अत्यधिक व्याकुल मौलश्री के वृक्ष के नीचे देखा है । उनके नील कमलवत् नेत्रों से अपार अश्रु बह रहा है । चंदन, कस्तूरी, कमल तथा कपूर आदि शीतलता के उपकरणों के प्रयोग के बाद भी इतने विकल हैं कि अपने पल्लववत् हाथों से आँखों को मूँद हुए पृथ्वी पर निराधार (असँभार) पड़े हुए हैं । मन्द सुगन्धित शीतल, मन्द तथा मलयानिल से सुरभित सुगंध वायु बह रही है किन्तु उन्हें ऐसा लग रहा है मानो उनके शरीर को प्रलयकालीन प्रचंडग्नि में जलाकर निश्चेतन कर रही हो । व्यथा से पीड़ित श्री कृष्ण की मोतियों की माला टूट-टूट कर पृथ्वी (खिति) पर पड़ी है । तमाल के सुन्दर पुष्पों के गुच्छ (जाल) कष्ट दे रहे हैं ।

वह दूती राधा को समझती हुई कहती है कि हे सुन्दरी ! मेरी बात स्वीकार करो, मान छोड़ो और जहाँ चतुर रसिक श्रीकृष्ण हैं, वहाँ चलो । विद्यापति कहे हैं तुम्हारे मान मोचन के निमित्त ही सुन्दर शब्दों में गया । वह आनन्द देनेवाला दाडक छन्द है ।

विशेष – मान मोचन के लिए राधा को समझाए जाने का संदर्भ है । श्री कृष्ण की व्यथा कहकर राधा के हृदय में सहानुभूति उत्पन्न की जा रही है । उपमा तथा उत्प्रेक्षालंकार हैं ।

(३) ए धनि कर अवधान ।

तो बिने उनमत कान ॥

कारण बिनु खिने हास ।

कि कहए गदगद भास ॥

आकुल अति उतरोल ।

हा धिक हा धिक बोल ॥

काँपये दुरबल देह ।

धरइ ना पाइय केह ॥

विद्यापति कह भाखि ।

रूपनारायन भाखि ।

शब्दार्थ

धनि - धन्या (सुन्दरी), अवधान - ध्यान दो, समझो, उनमत - उनमत्त (व्याकुल), कान - कान्ह, कृष्ण, कहये - वाणी, उतरोल - उतावलापन, कोह - कोई

भावार्थ

_____ दूती श्री कृष्ण की विरह दशा का बोध कराती हुई राधा से कहती हैं कि, हे राधे ! हे सुन्दरी, इसे अच्छी तरह विचारो कि श्री कृष्ण तुम्हारे बिना व्याकुल हो उठे हैं । उनकी हँसी अकारण ही क्षीण हो उठी है और वाणी विह्वलता से प्रभावित है । वे व्याकुल तथा उन्मत्त की भाँति कहते रहते हैं कि बिना राधा के जीवन धिक्कार है और वे हा धिक्कार, हा धिक्कार कहते रहते हैं । उनका देह काँपता रहता है और उनके पैर पृथ्वी पर नहीं पड़ पाते । विद्यापति उनकी विरह दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इसके साक्षी रूपनारायण राजा शिवसिंह हैं ।

विशेष – राधा के विरह में श्री कृष्ण की उताप तथा कम्प विरह दशाओं का वर्णन किया गया है।

MODULE II

MEDIEVAL HINDI POETRY - SELECTED DOHAS AND PADAS

कबीरदास

हिन्दी साहित्य में सन्त साधना के सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में कबीरदास का स्मरण निरन्तर किया जाता रहा है। कवि व्यक्तित्व के साथ-साथ उनका समाज सुधारक स्वरूप उनके देशकालातीत व्यक्तित्व का परिचायक रहेगा।

कबीर की प्रमुख रचनाएँ 'साखी', 'सबद' तथा 'रमैनी' के नाम से संकलित हैं और इस संकलन को 'बीजक' के नाम से पुकारा गया है। इसमें 'साखी' ज़्यादा लोकप्रचलित है।

कबीर का व्यक्तित्व सामान्यतया विद्रोही था। जाति-पाँति, धर्माडम्बर, मूर्तिपूजा, ऊँच-नीच आदि के सन्दर्भों को उन्होंने सर्वत्र तिरस्कारपूर्वक देखा है। उनकी कविताओं में धर्मान्धता तथा आडम्बर का खुलकर विरोध दिखाई पड़ता है।

प्रस्तुत दोहाओं में कबीर की प्रेमसाधना तथा ब्रह्म संबन्धी धारणाएँ उपलब्ध होते हैं। उनके गुरु, प्रेम, विरह तथा विविध प्रतीकों के द्वारा अभिव्यक्त विविध आध्यात्मिक सन्दर्भों को यहाँ उनकी व्याप्ति में देखा जा सकता है।

साखी

- (१) सतगुरु सवां न को सगा सोधी सई न दाति ।
हरि जूँ संवा न को हितू हरिजन सई न जाति ॥

शब्दार्थ

सवाँ - समान, सोधी - शुद्धि, दाति - दान, हरिजन - संत

भावार्थ

संदर्भ - 'गुरु माहात्म्य' से संबन्धित इन साखियों के अंतर्गत संत परंपरा के अनुसार गुरु की स्तुति की गई है। भक्ति साहित्य में गुरु को ईश्वर तुल्य बताकर उसे मनुष्य का मूल उद्धारक माना गया है और संतों ने प्राथमिकता देकर सर्वत्र गुरु के द्वारा किए गए मोक्ष एवं दिव्य ज्ञान कारक मार्ग दर्शन के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है। कबीर इस सन्दर्भ में गुरु के महत्व को सापेक्षिक रूप में इंगित करते हुए कहते हैं - सतगुरु के समान कोई सगा नहीं है, आत्मशुद्धि के समान कोई दान नहीं है, ईश्वर के सदृश कोई हितैषी (हित चाहनेवाला) नहीं है और संतों के समान अन्य कोई जाति नहीं है।

- (२) बलिहारी गुरु आपनै घौहाडी के बार ।
जिनि मानुष ते देवता करत न लागी बार ॥

शब्दार्थ

घैहाड़ी - दिन - घैह दिन का सूचक आड़ी प्रत्यय का प्रयोग अपने अर्थ में किया गया है - दिन को ही बतानेवाला प्रत्यय, बार - विलम्ब, जिनि - जिन्होंने, बलिहारी - समर्पित होना, कै - कोई, ते - को

भावार्थ

दिन में कितनी बार अपने गुरु की बलि जाऊँ क्योंकि मुझ मनुष्य को (मानवीय विकारों से ग्रस्त व्यक्ति को) देवता बनाने में उन्होंने लेश मात्र भी विलम्ब नहीं किया । अर्थात् गुरु के ज्ञान के संपर्क में आते ही मेरी संपूर्ण पाशविक मायाग्रस्तता क्षणभर में विनष्ट हो गई । गुरु के कारण मैं आज मायाग्रस्त मानव से देवता जैसे बन गया हूँ ।

- (३) गूँगा हूवा बाबरा बहरा हुआ कानि ।
पाऊँ थै पंगुल भया सतगुरि मार्या बनी ॥

शब्दार्थ

बावरा - उन्मत या पागल, पंगुल - पंगु, बानि - बाण

भावार्थ

सत्गुरु के संपर्क में आते ही उनके ज्ञान के प्रभाव का मुझ पर तात्कालिक प्रभाव पड़ा । सत्गुरु ने ज्ञान का ऐसा दिव्य बाण मुझ पर चलाया कि उसके लगते ही मैं गूँगा जैसा हो उठा, उन्मत हो उठा और कानों से बहरा हो गया तथा पांवों से पंगु (पैर से चलने की सामर्थ्य से वंचित) हो गया ।

विशेष - गुरु के ज्ञान के संपर्क में आकर लोकगीत का रुक जाना और उसके स्थान पर आध्यात्मिक दिव्यता के उदय का चित्रण कवि यहाँ कर रहा है । लोक जीवन की गति के आत्मोन्मुख हो जाने का कवि यहाँ चित्रण कर रहा है और यह दशा गुरु के ज्ञान से संपर्कित हो जाने के बाद उत्पन्न होती है ।

- (४) पीछे लगा जाइ था लोक बेद के साथि ।
आगै थै सतगुर मिल्या दीपक दीया हाथि ॥

शब्दार्थ

लोक - लोक प्रचलन, बेद - शास्त्रमत

भावार्थ

मैं सांसारिक व्यक्ति की भाँति अब तक लोक तथा शास्त्र व्यवस्थाओं के पीछे चलता जा रहा था । मार्ग में मुझे गुरु मिले और उन्होंने ज्ञान की दिव्य ज्योति से मंडित दीपक मेरे हाथ में थम्हा दिया ।

विशेष – सामान्यतः जब तक किसी ज्ञानी गुरु के द्वारा मनुष्य को तत्वबोध नहीं कराया जाता तब तक वह मनुष्य लोक तथा शास्त्रव्यवस्था का अन्धानुकरण करता चलता रहता है । गुरु के द्वारा यथार्थ तत्व का ज्ञान करा दिए जाने के बाद ही आचरण के तत्त्वार्थ का बोध होता है । गुरु के इस ज्ञान दान के प्रति कबीर यहाँ कृतज्ञता व्यक्त करते हैं ।

दीपक यहाँ ज्ञान के प्रकाश का प्रतीक है । सामान्यतः परम्परित रूपक जैसा इसका यहाँ प्रयोग हुआ है ।

(५) जाका गुरु भी अंधला चेला है जाजंध ।
अंधे अंधा ठेलिया दून्यो कूप पंडत ॥

शब्दार्थ

अंधला - अंध, निजंध - धैककर देखनेवाला, अस्पष्ट के दृष्टिदोष से युक्त ।, ठेलिया - धक्का देना, कूप पंडत - कूँ में गिरते हैं (अज्ञान में फँसना)

भावार्थ

जिसका गुरु अंधा है उसका शिष्य भी अस्पष्ट दृष्टिवाला होगा । कवि इसे एक दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट करता हुआ कहता है – मार्ग दर्शन के समय एक अंधे द्वारा दूसरे अंधे को धक्का दिये जाने पर दोनों साक्षात् कूँ में गिरते हैं ।

विशेष – अज्ञानी गुरु स्वयं तो अज्ञानी है और जन्मजात अज्ञानी शिष्य को गहन अज्ञान में डुबोकर पथ भ्रष्ट बनाता है । इस तथ्य को कहने के लिए अंधे अंधा ठेलिया एक दृष्टान्त रखा गया है जिससे यहाँ दृष्टान्त अलंकार है ।

(६) खंभा एक गयंद दुड़ क्यों करि बंधसि बारि ।
मानि करै तो पीव नहीं पीव तौ मान निवारि ॥

शब्दार्थ

खंभा - स्तंभ, बंधिसि बार - बाँधने में समर्थ, मानि - मान, निवारि - दूर करो

भावार्थ

कबीर प्रभु की प्राप्ति के लिए अहंकार को अपने से दूर करने के लिए कहते हैं । वे कहते हैं कि – तुम्हारे पास हाथी दो हैं किन्तु उनको बाँधने के लिए एक ही स्तंभ है । यदि अभिमान करते हो तो या मान करते हो तो इस शरीर में ईश्वर या आकांक्षित पति नहीं रह सकता और यदि पति रहता है तो मान या अहंकार का निवारण कर ।

दो हाथी - प्रभु तथा अहंकार या पति तथा मान का प्रतीक है । 'मन' एकमात्र स्तंभ है । मन अहंकार के और पति ईश्वर का प्रतीक है ।

संपूर्ण छन्द इस प्रकार प्रतीकबद्ध है ।

- (७) कबीर सीप समुंद की रटै पियास पियास ।
समुंदहिं तिनका भरि गिनै दूजा कहाँ समाइ ॥

शब्दार्थ

समुंद - समुद्र, दूजा - दूसरा, कहा समाई - उसकी क्या सामर्थ्य है

भावार्थ

मन की तृप्ति जिससे होती है, उसी से हो सकती है, अन्य साधनों से नहीं । आत्मा को इस भरे-पूरे संसार (समुद्र) में तृप्ति केवल ईश्वर से ही संभव है । इस दोहे में इसी मन्तव्य को व्यंजित करते हुए कबीरदास कहते हैं कि - समुद्र के भरे जल में रहते हुए भी सीप स्वाति नक्षत्र के जल के निमित्त 'प्यासी हूँ, प्यासी हूँ' कहकर रटती रहती है । विशाल तथा अगाध जल से भरे हुए समुद्र को भी वह तृणवत् गिनती है, अन्य जलधारों की क्या बात, वे समुद्र की तुलना में कहाँ आ सकते हैं ?

कबीर जीव की प्रभु के प्रति समर्पण भरी अनन्यता तथा समस्त भौतिक साधनों से विरक्ति का चित्रण करते हैं ।

रूपक अलंकार आधार के रूप हैं । प्रतीकबद्धता ही इस साखी के अर्थ की विलक्षणता का आधार है ।

- (८) कबीर कहा गरबिये ऊँचे देखि आवास ।
काल्हि परयौ भुइ लेटना ऊपर जामैं घासि ॥

शब्दार्थ

आवास - आवास गृह, भुइ - भूमि

भावार्थ

भौतिक समृद्धि की नश्वरत भरी तृच्छता का निरूपण करते हुए कबीरदास जी कहते हैं कि - हे मनुष्यों । तुम उच्च अट्टालिकाओं के आवास को देखकर क्यों गर्व करते हो, कहा तो, फिर तुम्हें इसी भूमि पर मृत्यु के वशीभूत होकर लौटना पड़ेगा और उसके बाद भी, तुम्हारे ऊपर घास जम जाएगा ।

अन्योक्ति अलंकार के माध्यम से समृद्धि के गर्व की तृच्छता का यहाँ निरूपण किया गया है ।

- (९) कबीर यह संसार है जस सेंबल का फूल ।
दस दिन के व्यवहार कौ झूँठै रंग न भूल ॥

शब्दार्थ

रंग – वर्ण या भौतिक चकाचौंध

भावार्थ

भौतिक चकाचौंध की क्षणभंगुरता का चित्रण करते हुए कबीर यहाँ कहते हैं कि – इस संसार की समृद्धि की चकाचौंध ऐसी है, जैसे सेमल के फूल की। इसकी चकाचौंध (रंग का आकर्षण) केवल दस दिनों के लिए ही क्षणिक मात्र है। इस पर तू मिथ्या न अहंकार कर या आत्मीयता दिखा। यहाँ उदाहरण अलंकार है।

(१०) कागद केरी नाव री पानी केरा संग ।

कहै कबीर कैसे तिरै पाँच कुसंगी संग ॥

शब्दार्थ

नावरी - नौका, केरा - का, तिरै - पार करे, पाँच - कुसंगी (काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्रोह - पाँच मनोविकार)

भावार्थ

जल के संपर्क से तुरन्त ही गल जाने वाली कागज़ की नौका है, पानी का ही निरन्तर साथ है, कबीर कहते हैं कि यह सागर कैसे पार किया जा सकता है? पाँच शत्रु उस पर सवार महायात्री हैं।

कहने का अर्थ है कि संसार एक अगाध समुद्र जैसा है। समुद्र का जल माया है और भौतिक साधन के रूप में कागज़ की नौका को माना है। पाँचों विकृतियाँ (मनोविकार) बाधा के रूप में साथ-साथ हैं। संसार में भौतिक साधनों से मुक्ति संभव नहीं है। प्रतीक योजना को अर्थ व्यंजना का आधार बनाया गया है।

रहीम

अब्दुरहीम ख़ाँ ख़ानख़ाना को आलोचकों ने सांस्कृतिक एकता या समन्वय का कवि माना है। बादशाह अकबर के संरक्षक बैरम ख़ाँ के ये पुत्र थे। मुगल बादशाह अकबर के विशेष प्रिय व्यक्तियों में ये थे और उसने ही इन्हें 'ख़ानख़ाना' की उपाधि प्रदान की थी।

अब्दुरहीम ख़ानख़ाना अनेक विषयों के पारंगत विद्वान थे और कुल मिलाकर उन्होंने ग्यारह रचनाएँ तथा पर्याप्त संख्या में दोहे लिखे, जिसे बाद में आलोचकों ने रहीम दोहावली के रूप में उसका नामकरण तथा संपादन किया है। इनका संस्कृत तथा फ़ारसी पर समान अधिकार था और अपने ज्योतिष विषयक ग्रंथ की रचना दोनों भाषाओं के मेल-मिलाप में की है। उनके ज्योतिष ग्रंथ का नाम 'ख़ेट कौतुम जातक' है। शृंगार रस से संबन्ध रहीम का 'नायिका बरवै' अधिक प्रसिद्ध है और कहा जाता है कि उनके द्वारा लिखित बरवै छन्दों की उत्कृष्टता से प्रभावित होकर स्वयं गोस्वामी तुलसीदास ने 'बरवै रामायण' की रचना की थी।

रहीम के दोहे हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं। रहीम के दोहों का संकलन 'दोहावली' या 'रहीम रचनावली' के नाम से पुकारा गया। रहीम के दोहे का मुख्य विषय नीति, श्रृंगार तथा भक्ति हैं। रहीम नीति के अद्वितीय कवि हैं।

रहीम - दोहे

(१) प्रीतम छवि नैनन, बसी पर छवि कहाँ समाय ।

भरी सराय 'रहीम' लखि, पथिक आपु फिरि जाय ॥

भावार्थ

कवि रहीम प्रेम आचरण को इंगित करते हुए कहते हैं कि, यदि प्रियतम की छवि आँखों में बसी हुई है, तो दूसरे की छवि उन आँखों में कहाँ समा सकती है। कवि इसके लिए एक उदाहरण देता हुआ कहता है कि – जैसी भरी हुई सराय देखकर वहाँ विश्रामके लिए आया हुआ राहगीर स्वयं वहाँ से लौट जाता है।

निदर्शना अलंकार है। पथिक का सराय से लौटना एक दृष्टान्त है और यही निदर्शना अलंकार का हेतु है।

(२) रहिमन राज सराहिये, ससि सम सुखद जो होइ ।

कहा बापुरो भानु है, तपै तरैयनि खोइ ॥

शब्दार्थ

बापुरो - बेचारा, भानु - सूरज, ससि - शशि

भावार्थ

रहीम कहते हैं कि उसी राज्य की सराहना करनी चाहिए जो चन्द्रमा से परिपूर्ण सुखदायी हो। वह बेचारा सूर्य तो व्यर्थ है तो ताराओं को भी नष्ट करके तपता है। रहीम यहाँ राजधर्म को परिभाषित करते हुए उत्तम राज्य की विशेषता बताते हैं। ताराओं को भी निरर्थक स्थापित करनेवाले सूरज सुखदायी चन्द्रमा के सामने व्यर्थ है। यानि राजशासन में तीव्रता का नहीं सुख का अनुभव होना ज़रूरी है।

(३) जाल परे जलजात बहि, तजि मीनन को मोह ।

रहिमन मछरी नीर को तरु न छाँड़त छोह ।

भावार्थ

सच्चे मित्र की हितैषिता के भाव को व्यक्त करता हुआ कवि कहता है कि, जाल पड़ने पर जाल से जल मछलियों का मोह त्यागकर और आगे की ओर बहकर मछलियों का साथ छोड़ देता है। लेकिन किसी भी परिवेश में मछलियाँ जल का साथ उसके बाद में भी नहीं छोड़तीं।

- (४) रहिमन जिह्वा बाबरी कहि गई सरग पताल ।
आपु तो कहि भीतर भई, जूती खात कपाल ॥

शब्दार्थ

बावरी - पागल

भावार्थ

रहीम कहते हैं कि यह नियंत्रण विहीन जिह्वा स्वर्ग से पाताल तक का बिना समझे सब कुछ कहकर मुंह के भीतर चली जाती है । किन्तु बदले में सिर को जूतियाँ खानी पड़ती है । रहीम निष्कर्ष निकलते हैं कि नियंत्रण विहीन मित्र नासमझी में बढ़कर हमेशा संकट उत्पन्न करते हैं ।

अन्योक्ति अलंकार है ।

- (५) जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चन्दन विष व्याप्त नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥

भावार्थ

रहीम कहते हैं कि यदि व्यक्ति उत्तम प्रकृति का है तो कुसंग उसका कुछ भी नहीं विगाड़ सकता । कितने भी सर्प चंदन पर लिपटे रहें किन्तु उस पर विष नहीं व्यापता ।

अन्योक्ति अलंकार है ।

बिहारी

हिन्दी रीतिकाल की कविता सामान्यतया दो भागों में विभक्त की जाती है – प्रथम, रीतिबद्ध कविता और द्वितीय रीतिसिद्ध कविता । बिहारीलाल का संबन्ध हिन्दी रीतिकाल की रीतिसिद्ध काव्य परंपरा से है । बिहारी ने यद्यपि रस, अलंकार, गुण, रीति आदि पर कोई लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखा है, फिर भी उनके सृजन को 'रीति' आद्यन्त प्रभावित किया है ।

बिहारी का जन्म रीतिकाल के आलोचकों ने संवत् १६५२ (गवालियर) में माना है । उनके पिता का नाम केशवराय था और हिन्दी के कई आलोचक भ्रमवश प्रसिद्ध आचार्य केशवदास को ही इनका पिता बताते हैं ।

हिन्दी साहित्य में बिहारी को उनकी अकेली कृति 'बिहारी सतसई' के कारण पर्याप्त सम्मान मिला है । इन्होंने जयपुर के राजा महाराज जयसिंह की प्रेरणा से इस कृति की रचना की थी ।

बिहारी सतसई 'मुक्तक काव्य कला' का हिन्दी साहित्य में अद्वितीय उदाहरण है । एक छन्द में रचना चातुरी द्वारा अर्थ की अनेक संभावनाओं को भर देना ही मुक्तक कला है और बिहारी इस कला के सिद्धहस्त कवि हैं । इनके दोहों के संदर्भ में इसी कारण 'गागर में सागर' भरने का मुहावरा विख्यात है ।

बिहारी सतसई - दोहे

(१) मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोड़ ।

जा तन की झाई परैं स्यामु हरिमु हरित दुति होड़ ॥

शब्दार्थ

नागरि - चतुर (प्रवीण), जा तनकी - जिसके शरीर की, तनक मात्र (लेश मात्र), झाई - झलक, परै - पड़ने से, श्याम - कनमष (पाप), द्युति - प्रकाश

भावार्थ

वही प्रवीण राधिका मेरी भवजन्य बाधाओं (संकटों) को दूर करें - जिसकी लेशमात्र छाया पड़ने से श्याम (पाप) नष्ट हो जाते हैं और हरित (उज्ज्वलता और पवित्रता) आ जाती है ।

विशेष - इस छन्द के कई अर्थ निकलते हैं । इन अर्थों का आधार श्लेष अलंकार है ।

कहा जाता है कवि ने 'राधा वल्लभ' संप्रदाय में दीक्षा ली थी, अतः राधा की वह प्राथमिकता के स्तर पर वन्दना करता है । इस दोहे में कृष्ण के साक्ष्य संदर्भ में भी 'राधा' का ही महत्व निर्धारित होता है ।

..... 'बिहारी सतसई' के मंगलाचरण के रूप में स्वीकार करना चाहिए ।

(२) नीकी दई अनाकनी फीकी परी गुहारि ।

तज्यौ मनौ तारन बिरदु बारक बारनु तारि ॥

शब्दार्थ

अनाकनी - न सुनने का भाव, गुहार - पुकार, बारनु - गजराज

भावार्थ

हे प्रभु ! अपने तो भलि-भाँति आनाकानी कर दी है । मेरी पुकार इसीलिए फीकी पड़ गई है । उससे लगता है कि एक बार गजराज का उद्धार कर देने के बाद आपने उद्धारकर्ता का (स्वयं का) अपना यश त्याग दिया है ।

उत्प्रेक्षालंकार है ।

(३) कौन भाँति रहैं बिरदु अब देखिबी मुरारि ।

बीधे मोसे आई के गीधे गीधाहिं तारि ॥

शब्दार्थ

देखिबी - देखना है, बीधे - बिंघे हुए, गीधे - लुब्ध

भावार्थ

हे मुरारी श्री कृष्ण ! आपका विरद (यश) किस भौंति रहेगा, यह मुझे देखना है । एक लुब्ध गिद्ध का तारकर अब आप मुझसे आकर बिद्ध हो गए हैं (फँस गए हैं) । मुझ जैसे पापी का उद्धार करें, तब मैं आपको समझ पाऊँगा ।

(४) जगत जनायो जिहि सकलु सो हरि नाँहि ।
ज्यों आँखिन सबु देखियै आँखि न देखी जाँहि ॥

शब्दार्थ

जनायो - जाना जाता है, जाना - समझा

भावार्थ

जिसमें संपूर्ण जगत् का ज्ञान कराया है, हे व्यक्ति ! तूने उसे नहीं समझा । जैसे आँख के द्वारा सब कुछ देखा जाता है किन्तु (आँखों द्वारा) आँखों को नहीं देखा जा सकता । ईश्वर के बारे में हमारे अज्ञान का वर्णन किया गया है ।

विशेष - उदाहरण एवं विशेषोक्ति अलंकार है । आँख का उदाहरण है तथा आँख रहने पर भी न देखना - कारण रहते हुए भी कार्य का न होना विशेषोक्ति है ।

(५) दीरघ सास न लेहिं दुख सुख साइहिं न भूलि ।
दई दई क्यों करतु है दई दई सु कबूलि ॥

शब्दार्थ

साइहि - स्वामी को, दई-सु दई - प्रभु ने जो कुछ भी दिया है, कबूलि - स्वीकार करो

भावार्थ

हे व्यक्तियों ! दुःख पड़ने पर ऊँची-ऊँची सासें न लो, और सुख के क्षणों में स्वामी (परमात्मा) को न भूलो । दुःख पड़ने पर दई-दई (हाय-हाय) क्यों करते हो जो प्रभु ने तुझे दिया है, उसे तुम स्वीकार करो ।

विशेष - 'दई-दई' यमक अलंकार का उदाहरण है ।

सूरदास

श्रीकृष्ण लीला के साथ लोकानुभव की सहजता तथा स्वाभाविकता को जोड़नेवाले मध्यकालीन कृष्णभक्ति काव्य परंपरा के लोकविश्रुत गायक सूरदास हिन्दी की अमूल्य निधि है ।

आध्यात्मिक अनुभव, साहित्य दृष्टि तथा संगीतमयता इन तीनों का अद्भुत संगम उनके सृजन का मूलधर्म है। उनकी कृतियों में 'सूरसागर' सबसे महत्वपूर्ण है। 'साहित्य लहरी' तथा 'सूर सारावली' अन्य प्रमुख रचनायें हैं।

कहा जाता है कि सूरदास जन्म से अंध थे। उनकी कृति 'सूर सागर' श्रीकृष्ण लीला की अमर गीति रचना है। 'सूरसागर' में प्रभु के अवतारों का वर्णन करता हुआ, अंत में कवि श्रीकृष्ण लीला पर अपने को केन्द्रित करता है। बाल, सखा तथा श्रृंगार भाव उसकी लीलाधर्मी कविता की प्रमुख आधारभूमि हैं और कवि इन्हीं तीन भावात्मक वृत्तियों से अपने को जोड़ता है। सूर को हिन्दी ही नहीं विश्व साहित्य के बाल वर्णन की कविता का अद्वितीय कवि कहा जा सकता है। सूर की श्रृंगारलीला का वर्णन भी हिन्दी कविता में अद्वितीय है। लीला की आध्यात्मिकता तथा लोक की श्रृंगार वासना दोनों का अद्भुत समन्वय उनकी कविता में दिखाई पड़ता है।

सूरसागर

वन्दना

(१) मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पर आवै ।
कमल नैन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
परम गंग को छाँड़ि पियासो दुरमति कूप खनावै ।
जिहिं मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल भावै ।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥

शब्दार्थ

— अनत - अन्य स्थान (आश्रय) के पद, महातम - माहात्म्य, महिमा, दुरमति - दुर्बुद्धि, करील-
एक काटेदार झाड़ी युक्तवृक्ष, छेरी - बकरी

भावार्थ

— अन्य देवों का त्याग करके सूरदास श्रीकृष्ण की भक्ति तथा उपासना के लिए यहाँ अपने व्यावहारिक तथा भाव प्रधान तर्क देते हैं। वे कहते हैं कि - मेरा चित्त श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कहीं भी शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता है। इसके लिए वह एक उदाहरण देते हुए कहते हैं कि जैसे समुद्री जहाज़ पर बैठा हुआ पक्षी अन्य आश्रय की खोज के लिए उड़ता हुआ पुनः हारकर अन्य आश्रयों को न पाकर पुनः उसी जहाज़ पर लौट आता है।

सूरदास पुनः कहते हैं कि कमल नेत्रवाले श्रीकृष्ण की महिमा गान को छोड़कर अन्य देवों का ध्यान कौन करे ? क्योंकि कौन प्यास ऐसा नासमझ होगा जो सामने परम पावनी बहती हुई गंगा को छोड़कर (प्यास की पूर्ति के निमित्त) कुआँ खुदवाएगा । जिस भ्रमर रूपी भक्त के चित्र ने कमल के रस का स्वाद चख लिया है, उसे करील के फल का स्वाद क्यों अच्छा लगेगा ।

अंततः सूरदास निष्कर्ष निकालते हुए कहते हैं कि संपूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले कामधेनु जैसे श्रीकृष्ण त्याग करके कौन-सा ऐसा व्यक्ति होगा जो दूध के लिए बकरी को वरीयता देगा ।

विशेष – सूरदास अपने मन्तव्य को कहने के लिए उदाहरण और दृष्टान्त अलंकारों का आधार ग्रहण करते हैं ।

घुटनों चलना

(२) खीझत जात माखन खात ।

अरुन लोचन भौंह टेढ़ी बार-बार जँभात ।

कबहुं रुनझुन चलति घुटुरुनि धुरि धूसर गात ।

कबहुं झुकि कै अलक खींचत नैन जल भरि जात ।

कबहुं तोतर बोल बोलत कबहुं बोलत तात ।

सूर हरि की निरखि सोभा निमिष तजत न मात ॥

शब्दार्थ

धूसर - धूसरित, सना हुआ, तोतर - तुतलाहट भरा, निमिष - एक पल के लिए भी, तात - खीझ के साथ

भावार्थ

कवि सूरदास कृष्ण की बाललीला का वर्णन करते हुए उनकी विविध चेष्टाओं का दृश्यांकन कर रहे हैं । वे कहते हैं – श्रीकृष्ण माखन खाते जाते हैं, खीझते भी जाते हैं । खीझ के कारण उनके नेत्र अरुणवर्ण के हो उठे हैं, भौंहें टेढ़ी हैं और बार-बार जमाँई लेते हैं । धूल से सने, कभी घुटनों के बल चलते (उनके) पाँव के नूपुर बजते हैं । कभी झुक कर अपने बालों को खींचते हैं और कभी उनके नेत्रों में अश्रुजल भर आता है । कभी तोतली बोली में बोलते हैं और कभी रसभरी खीझ के साथ बोलते हैं ।

श्रीकृष्ण की इस बाल सुलभ चेष्टा से आकर्षित यशोदा माता उन्हें एक क्षण के लिए भी नहीं त्यागती ।

विशेष – भाव दशा के अनुरूप शिशु की चेष्टाओं का स्वाभाविक निरूपण है। अतः इसे स्वभावोक्ति अलंकार कहा जा सकता है।

श्रीकृष्ण-राधा मिलन

(३) बुझत स्याम कौन तू गोरी ।

कहाँ रहति काकी है बेटी देखी नहीं कहूं ब्रजखोरी ।
काहे को हम ब्रजतन आवति खेलति रहति आपनी पौरी ।
सुनत रहति सवननि नंद ढोटा करत फिरत माखन दधि चोरी ।
तुम्हारे कहा चोरि हम लैहें खेलन चलौ संग मिलि जोरी ।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बातनि भुरड़ राधिका भोरी ॥

शब्दार्थ

— बूभत - पूछते हैं, ब्रजखोरी - ब्रज की गलियों में, पौरी - दरवाजे पर, जोरी (जोड़ीदार) - साथी, भुरड़ - भुलावा

भावार्थ

— प्रथम दर्शन से उत्पन्न प्रथम प्रणयभाव के बाद नायक-नायिका एक दूसरे के प्रति विश्वसनीयता का भाव उत्पन्न करते हैं। कवि यहाँ दोनों के बीच पारस्परिक विश्वसनीयता का वातावरण उत्पन्न करता हुआ कहता है -

कृष्ण पूछते हैं, री गोरी तू कौन है ? तू कहाँ रहती है, किसकी पुत्री है और आजतक तो तुझे मैंने ब्रज की गलियों में देखा तक नहीं है ?

राधा उत्तर देती है, हम ब्रज तक क्यों आती, हम तो अपने द्वार पर ही अबतक खेलती थी। हाँ, यह कानों से सुनती रहती कि एक नन्द का छोरा (नटखट पुत्र) है, जो चारों तरफ माखन की चोरी करता रहता है।

श्रीकृष्ण राधा को समझाते हुए उत्तर देते हैं - राधा ! तुम्हारा हम क्या चुरा लेंगे, मेरे साथ साथी (जोरी) बनकर खेलने चलो।

सूरदास इस प्रथम प्रसंग पर अपनी टिप्पणी देते हुए कहते हैं कि रसिक शिरोमणि प्रभु श्रीकृष्ण बातों ही बातों से भुलावा देकर भोली-भाली राधा को लेकर चले।

विशेष – प्रणय के अंकुरण के बाद प्रतीति (परस्पर विश्वास) आवश्यक है । यहाँ कवि उसी प्रतीति का चित्रण कर रहा है ।

गोपी विरह

(४) देखियति कालिंदी अति कारी ।

अहो पथिक कहियौ उन हरि सों भई विरह जुर जारी ।
गिरि प्रजंक तें गिरति धरनि धँसि तरँग तरफ तन भारी ।
तट बारू उपचार चूर जल पूर प्रस्वेद पनारी ।
विगलित कच कुस काँस कूल पर पंक जु काजल सारी ।
भौर भ्रमत अति फिरति भ्रमित गति दिसि दिसिदीन दुखारी ।
निसि दिन चकई पिय जु रटित है भई मनौ अनुहारी ।
सूरदास प्रभु जो जमुना गति सो गति भई हमारी ॥

शब्दार्थ

— कालिंदी - यमुना, प्रजंक - पलंग, हारनि - पृथ्वी, कच - बाल, बारू - बालू, रेत, उपचारचूर - औषधिपूर्ण, प्रस्वेद-पसीना, पनारी - नाला, अनुहारी - समान

भावार्थ

— यमुना के सांगरूपक अर्थात् सादृश्य के माध्यम से गोपिकाएँ अपनी विरह अवस्था का वर्णन करती हुई, श्रीकृष्ण के पास पथिक द्वारा संदेश भेजती हैं । वे कहती हैं कि – हे पथिक ! श्रीकृष्ण से तुम जाकर कहना कि आपके विरह ज्वर में जली हुई गोपिकाएँ अत्यन्त काली हुई यमुना की भाँति (काली) दिख रही हैं ।

गिरि रूपी पलंग से गिरती हैं, पृथ्वी पर धंस पड़ती हैं, उनके शरीर की तड़पन यमुना की तरंगों की भाँति है । यमुना तट के बालू गोपिकाओं के शरीर पर लगने के बाद झड़े हुए उपचार चूर्ण की भाँति तथा उत्ताप से बहती पसीनों की बँदी जलभरे नालों के सदृश हैं ।

गोपिकाओं के बिखरे हुए बाल यमुना तट पर स्थित कुस-काँस जैसे और उनके निरन्तर अशु प्रवाह से काजल सनी भीगी साड़ी, जैसे कीचड़ हो । रात दिन हम दुखी गोपिकाएँ इधर उधर भ्रमित गति वाली यमुना की भ्रमित भौरे हैं । यमुना के तट पर प्रत्येक रात्रि-दिन को अपने प्रिय की रट लगाने वाली चक्रवाकी (पक्षी) जैसी दशा हमारी भी हो गई है ।

सूरदास अंत में, निष्कर्ष निकालते हुए कहते हैं कि आज जो यमुना नदी की दुर्दशा बनी हुई है, वही दुर्दशा हमारी भी है ।

विशेष – यहाँ यमुना का सांगरूपक अलंकार है ।

भ्रमरगीत प्रसंग

(५) जाके गुन गावत दिनरात ।

ताकों निरगुन कहत मधुप तुम नई सुनी यह बात ।
जो बादर जल बरषै निसि दिन जुमड़ि भरै नद खात ।
स्वाति बिना नहिं कल मधुकर सुनि खग चातक के गात ।
बंसी मधुर सुनाइ हर्यो मन दधि खायो लै पात ।
सुर स्याम नृपराज भए अब गोपिनि देखि लजात ॥

शब्दार्थ

_____ खात - तालाब, पात - पत्ता, अधुप - भ्रमर, नहिंकल - शान्ति नहीं मिलती

भावार्थ

_____ भ्रमरगीत प्रसंग का आधार भागवत पुराण है । भ्रमर को उपलक्षित करके श्रीकृष्ण के प्रति कही गई गोपिकाओं की व्यंग्यपूर्ण उक्तियाँ यहाँ सुर की रचनात्मक विदग्धता को सूचित करती है । सुर भ्रमर को बहाना बनाकर श्रीकृष्ण के प्रति व्यंग्योक्ति हैं कि – हे भ्रमर ! जिस कृष्ण के गुणों का गान हम रात-दिन गाती रहती हैं, उसको तुम निर्गुण कहते हो, यह हमने नई बातें सुनी हैं ।

यद्यपि बादल रात-दिन जल की वर्षा करती है और उसके जल के प्रवाह से नदी तथा तालाब उमड़कर भर जाते हैं फिर भी, हे भ्रमर ! सुनो, कि स्वाति जल के बिना चातक पक्षी के शरीर को शान्ति नहीं मिलती । उसी प्रकार मधुर वंशी सुनाकर जिस कृष्ण ने हमारे मन को हर (अपहरण) लिया है । पत्ते पर माँग कर हमारे हाथों से स्वयं जो हरि दहि खाया करते थे, वही श्रीकृष्ण राजाओं के राजा बन गए हैं और अब हम गोपियों को देखकर लज्जा का अनुभव करते हैं । क्या वे इसी लज्जा तथा भय से यहाँ नहीं आना चाहते ?

तुलसीदास

आलोचकों ने गोस्वामी तुलसीदास को महात्मा गौतम बुद्ध के बाद सबसे बड़ा लोकनायक स्वीकार किया है । गोस्वामी तुलसीदास अपने युग के वह व्यक्ति थे, जिन्होंने आश्रयविहीन भारतीय जनमानस को श्रीराम का आश्रय दिया ।

तुलसीदास की १२ प्रामाणिक कृतियाँ स्वीकार की जाती हैं, जिनमें तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं – श्रीरामचरितमानस, विनयपत्रिका तथा कवितावली । श्रीरामचरितमानस की मूल चिंता मानवीय शुभ मूल्यों की संरक्षा तथा उसी के प्रकाश में इस सृष्टि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानव जाति के हितों की संरक्षा है । श्रीरामचरितमानस की भाषा अवधि है । रामकथा को कवि ने अपने उद्देश्यों के अनुकूल परिवर्तित करके अपने विशिष्ट मन्तव्यों को समाहित किया । श्रीरामचरितमानस की रचना का आधार ही लीला और अध्यात्म के द्वन्द्व का विकास है । मानवीय मूल्यों, भक्ति की प्रतिष्ठा तथा श्रीराम के दैवी व्यक्तित्व ही रामचरितमानस का मूल जड़ है ।

श्रीरामचरितमानस

धनुर्भंग - प्रसंग

(१) सिय सोभा नहिं जाइ बखानी । जगदंबिका रूप गुन खानी ॥
 उपमा सकल मोहि लघु लागीं । प्राकृत नारि अंग अनुरागीं ॥
 सिय बरनिअ तेइ उपमा देई । कुकबि कहाइ अजसु को लेइ
 जौं पटतरिअ तीअ सम सीया । जग असि जुवति कहाँ कमनीया ॥
 गिरा मुखर तन अरध भवानी । रति अतिदुखित अतनु पति जानी ॥
 विष बारुनी बंधु प्रिय जेही । कहिअ रमा सम किमि बैदेही ॥
 जौं छबि सुधा पयोनिधि होई । परम रूपमय कच्छपु सोई ॥
 सोभा रजु मंदरु सिंगारु । मथै पानि पंकज निज मारु ॥
 दो. – एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल ।
 तदपि संकोच समेत कबि कहहिं सीय समतूल

शब्दार्थ

_____ जगदम्बिका - संसार की माता, प्राकृत नारि - लोक की स्त्रियाँ, पटतरिअ - तुलना करें,
 तीअ - स्त्रियाँ, गिरा - सरस्वती, मुखर - वाचाल, रति - काम की पत्नी, वारुणी - मदिरा
 (शराब)

भावार्थ

_____ धनुर्भंग प्रसंग में स्वयम्बर स्थल पर सीता का पदार्पण होता है । कवि यहाँ सीता के सौन्दर्य का चित्रण करता हुआ कहता है – जगज्जननी रूप एवं गुण की भंडार सीता की शोभा का वर्णन करते नहीं बनता । लोक-स्त्रियों में स्थित (अंग में लगी) समस्त उपमाएँ मुझे तुच्छ लगती हैं ।

उन्हीं (लोक-स्त्रियों के लिए प्रसिद्ध) उपमाओं को देकर सीता का वर्णन करके कौन व्यक्ति कुकवि कहा कर अपयश ले । यदि लोक-स्त्रियों के साथ सीता की तुलना की जाए तो संसार में ऐसी कमनीय स्त्री कहाँ है ?

अंततः सूरदास निष्कर्ष निकालते हुए कहते हैं कि संपूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले कामधेनु जैसे श्रीकृष्ण त्याग करके कौन-सा ऐसा व्यक्ति होगा जो दूध के लिए बकरी को वरीयता देगा ।

यदि सरस्वती से सीता की उपमा दी जाए तो वह वाचाल है, पार्वती अर्धांगिनी है । अपने पति को अशरीरी जानकर रति अत्यधिक दुखी रहती है । विष तथा मदिरा जिसके प्रिय बन्धु हों, ऐसी लक्ष्मी के साथ सीता क्यों तुलनीय होंगी ।

यदि छविरूपी अमृत का समुद्र हो, परम स्वरूपवान कच्छपावतार ब्रह्मा कच्छप हो, सौन्दर्य रस्सी हो, श्रृंगार एवं मंदराचल हो और कामदेव स्वयं उसे अपने (दोनों) हाथों से मथे ।

दो. – इस प्रकार जब सुन्दरता तथा सुख की मूल सुन्दरी उत्पन्न हो तो भी कवि उसे संकोचपूर्वक सीता के समतुल्य कहेंगे ।

विशेष – स्वयंवर का संदर्भ है । कवि सीता के सौन्दर्य का वर्णन रूप की अद्वितीयता को आधार बनाकर रहा है । राजाओं के लिए अद्भुत आकर्षण । लेकिन उस लोकार्पण को कवि आध्यात्मिक व्यंजना से तोड़ रहा है ।

अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग ।

- (२) चलीं संग लै सखीं सयानी । गावत गीत मनोहर बानी ॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी । जगत जननि अतुलित छवि भारी ॥
भूषन सकल सुदेस सुहाए । अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारीं । देखि रूप मोहे नर नारीं ॥
हरषि सुरन्ह दुंदुभीं बजाई । बरषि प्रसून अपछरा गाई ॥
पानि सरोज सोह जयमाला । अवचट चितए सकल भुआला ॥
सीय चकित चित समहि चाहा । भए मोहबस सब नरनाहा ॥
मुनि समीप देखे दोऊ भाई । लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥
दो. – गुरुजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि ।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ॥

शब्दार्थ

रंगभूमि - स्वयंबर स्थली, रंगशाला, अपछरा - अप्सराएँ, अवचर - आकस्मिक रूप से,
एकाएक

भावार्थ

स्वयम्बर स्थल में पति को वरण करने की कामना से आई सीता की श्रीराम के प्रति प्रथम स्नेहासक्ति का कवि वर्णन करता है ।

मनोहर वाणी में गीत गाती हुई चतुर सखियों साथ लेकर चलीं । उनके नवीन शरीर पर सुन्दर साड़ी शोभित है । जगज्जननी की छवि अतुलनीय है । सुन्दर अंगों पर आभूषण शोभित हैं जिन्हें सखियों ने अंग-प्रत्यंग पर सँवार सजाया है । रंगभूमि में जब सीता ने चरण रखा - उनके रूप को देखकर नर-नारी विमुग्ध हो उठे ।

देवताओं ने हर्षित होकर दुंदुभी वादन किया और अप्सराओं ने पुष्प वर्ष करके गान किया । सीता के कर-कमलों में जयमाला शोभित है । ऐसी सीता को चकित भाव से सभी राजाओं ने अचानक देखा ।

सीता ने चकित भाव से श्रीराम को देखा । उनको देखकर सभी मोह के वशीभूत हो उठे । सीता ने मुनि के पास बैठे हुए दोनों भाईयों को देखा मानो नेत्र अपना खजाना पाकर लालच से लुब्ध हो उठे ।

दो. - गुरुजनों की लज्जा तथा बड़े समाज को सामने देखकर सीता सकुचा गई । वे (विवशीभूत) श्रीराम को हृदय में धारण करके सखियों को देखने लगीं ।

विशेष - श्रीराम के प्रति स्नेहासक्ति को कवि यहाँ संकेतभाव से व्यंजित कर रहा है । उत्प्रेक्षालंकार विशेष महत्वपूर्ण है ।

(३) राम रूपु अरु सिय छबि देखें । नर नारिन्ह परिहरीं निमेषें ॥
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं । बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ॥
हरु बिधि बेगि जनक जड़ताई । मति हमारि आसि देहि सुहाई ॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू । सीय राम कर करै बिआहू ॥
जागु भल कहिहि भाव सब काहू । हठ कीन्हें अंतहूँ उर दाहू ॥
येहिं लालसाँ मगन सबु लोगू । बरु साँवरो जानकी जोगू ॥
तब बंदीजन जनक बोलाए । बिरिदावली कहत चलि आए ॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा । चले भाट हिअँ हरषु न घोरा ॥
दो. - बोले बंदी बचन बर सुनहु एकल महिपाल ।

पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल ॥

शब्दार्थ

परिहरी निमेषे - पलकों का गिरना, पनु - प्रतिज्ञा, वरु - वर, दूल्हा, विरिदावली - विरिदावली, वंश परंपरा का गुणगान, बंदी - चारण या भाँट जो विरुदावली का गायन करते हैं

चारण राजा की प्रतिज्ञा एवं विवाह का संदर्भ बताते हुए संपूर्ण समाज को राजाओं की वंश परंपरा का परिचय देते हैं। यहाँ इसी प्रसंग का अवतरण करते हुए कवि तुलसीदास कहते हैं कि - श्रीराम के स्वरूप तथा सीता की छवि देखकर नर-नारियों ने पलकों का गिरना छोड़ दिया। सभी सोचते हैं, कहने में संकुचित होते हैं, इसलिए ब्रह्मा से मन-ही-मन विनय करते हैं।

हे विधाता ! शीघ्र ही जनक की मूढ़ता का हरण कर लें और हमारी ही जैसी उन्हें सुन्दर मति दे दें जिसके फलस्वरूप बिना विचार किए राजा अपना प्रण छोड़कर सीता का श्रीराम के साथ विवाह कर दें।

संसार इसे भला कहेगा क्योंकि यही संसार को बला लग रहा है। हठ करने में अन्ततः हृदय ही जलेगा। इसी लालसा में समस्त जन भूले हुए थे कि जानकी के योग्य तो यही श्यामल वर है।

तब जनक ने बंदीजनों को बुलाया और वे वंश प्रशस्ति गाते हुए चले आए। राजा ने कहा कि जाकर समस्त राजाओं से मेरा प्रण कहो। भाँट यह सुनकर चलते है। उनके हृदय में भी हर्ष होने लगते हैं।

दो. - भाँटों ने श्रेष्ठ वचन कहा। हे राजाओं सुनो ! अपनी विशाल भुजाओं को उठाकर हम जनक की प्रतिज्ञा कहते हैं।

विशेष - नायिका को प्राप्त करने की आकांक्षा भावना की जागृति के लिए यह प्रसंग महत्वपूर्ण माना जाता है। प्राचीन भारतीय परंपरा में विवाह की इस प्रणाली का उल्लेख है।

मीराबाई

मीरा का जन्म मेडता के पास कुड़की नामक गाँव में हुआ था। जोधपुर के राजा राव दूदाजी के पुत्र रत्नसिंह की इकलौती पुत्री थी। कुँवर भोजराज के साथ मीरा का विवाह हुआ था। दुर्भाग्य से विवाह के कुछ ही साल बाद भोजराज की मृत्यु हो गयी। किंतु मीरा ने तो बचपन से ही गिरिधर गोपाल को अपने पति के रूप में वरण कर रखा था। पति की मृत्यु के बाद इन्हें अनेक संकटों का सामना करना पड़ा। मीराबाई ने अपनी कविता उन समस्त संकटों का बार-बार उल्लेख किया है और यह भी बताया है कि श्रीकृष्ण के प्रति तन मन धन और पूर्ण विश्वास से समर्पित होने के कारण इन संकटों का कोई विपरीत परिणाम नहीं निकला।

मीराबाई ने कृष्ण के प्रति रागात्मक भक्ति का स्वरूप रखा है । मीराबाई की साधना वैयक्तिक रागात्मक ऐश्वर्य की साधना है और श्रीकृष्ण का लीलामय स्वरूप तथा अलंकरण उसका आधार है । मीराबाई के सारे पद उनकी इसी साधना के साक्ष्य हैं । दैन्य का आभासिक रूप किन्तु लीला श्रृंगार की भक्ति भरी समर्पण निष्ठा मीरा की कविता की केन्द्रीय संवेदना है । मीराबाई भक्ति काव्य धारा के अंतर्गत मधुर भाव की भक्ति को प्रस्तुत किया है ।

मीरा द्वारा रची गई कृतियाँ अपूर्ण रूप में मिली है । 'गीतागोविन्द की टीका', 'नरसीजी का मायरा', 'राग सोरठा', 'मलार राग', 'राग गोविन्द' आदि इनमें प्रमुख हैं ।

पदावली

(१) मण थैं हरि रे चरण ।

सुभग सीतला कँवल कोमल जगत ज्वाला हरण ।

इण चरण प्रह्लाद परस्यौं इन्द्र पदवी धरण ।

इण चरण ध्रुव अटल करस्यौं सरण असरण सरण ।

इण चरण ब्रह्माण्ड भेट्यौं नख शिखौं गिरि भरण ।

इण चरण कालिया गाध्यौं गोपी लीला करण ।

इण चरण गोवरधन धट्यौं गरब मधवा हरण ।

दासि मीरा लाल गिरिधर अगम तारण तरण ॥

शब्दार्थ

परसि - स्पर्श करो, प्रणाम करो, मधवा - इन्द्र

भावार्थ

मीराबाई प्रभु श्रीकृष्ण का स्मरण करती हुई कहती हैं कि - रे मन ! तू भी हरि के चरणों का स्पर्श करो । वे चरण पवित्र तथा कमल की भाँति निर्मल तथा संसार की ज्वाला को शान्त करनेवाले हैं ।

इन चरणों को इन्द्र की पदवी धारणा करनेवाले प्रह्लाद ने स्पर्श किया था । ये चरण असहाय जनों के लिए शरणस्थली है तथा इन्हीं चरणों ने भक्ति के कारण ध्रुव को अक्षय तथा अटल बना दिया है । नख से शिख तक धारण करनेवाले प्रभु के इन चरणों से वामनावतार में वह ब्रह्मांड का स्पर्श किया था । गोपियों के साथ लीला करनेवाले श्रीकृष्ण के इन्हीं चरणोंवाले प्रभु श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत धारण किया है । मीराबाई निष्कर्ष निकलती हुई कहती है कि प्यारे गिरधारी श्रीकृष्ण अनन्य हैं, और वही अनाथों का उद्धार करनेवाले भी हैं । उनके चरणों का आश्रय ग्रहण करने से शान्ति और संस्था प्राप्त की जा सकती है ।

विशेष – प्रभु के चरणों की वन्दना के माध्यम से उनके माहात्म्य का चित्रण है। 'चरण' शब्द का अनेकार्थ में प्रयोग हुआ है।

(२) बस्यौं म्हारे षेणण माँ नँदलाल ।

मोर मुकुट कमराकृत कुण्डल अरुणतिलक सोहाँ भाल ।

मोहन मूरत साँवरा सूरत णेणा बणया विशाल ।

असा सुधारस मुरली राजौं उर बैजंती माल ।

मीराँ प्रभु संताँ सुखदायाभगत बछल गोपाल ॥

शब्दार्थ

म्हारे - मेरे, षेणण माँ - नैनन, माँ - नेत्रों में, सोहाँ - शोभित, णेणा- नैना, नेत्र, वछल-
वत्सल - स्नेह देनेवाले

भावार्थ

मीरा श्रीकृष्ण के स्वरूप से आत्मासक्ति स्थापित करती हुई उनकी भक्त वत्सलता का गुणगान कर रही हैं - हे नन्दलाल श्रीकृष्ण आप मेरे नेत्रों में निवास करें। सिर पर मयूर मुकुट है, कानों में मकर की आकृति के कुण्डल हैं और मस्तक पर अरुण वर्ण का तिलक शोभित है। ओष्ठों में अमृत रस बरसाने वाली वंशी शोभित है और हृदय पर वैजयन्ती माला है। इस रूपाकृतियुक्त श्रीकृष्ण भक्तों के प्रति अनन्त स्नेह प्रकट करनेवाला है।

विशेष – कृष्ण के परम्परित रूपविन्यास को अंकित करके उनकी करुणा और वात्सल्य का स्मरण किया गया है।

महाकवि भूषण

हिन्दी कविता के रीतिकाल के अंतर्गत शृंगार काव्य रचना की लीक से हटकर महाकवि भूषण ने जिस वीर रस की प्रतिष्ठा की है, उसका अपना ऐतिहासिक महत्व है। महाकवि द्वारा रचित छह ग्रन्थों का नाम उल्लेखनीय है - 'भूषण हजारा', 'भूषण उल्लास', 'दूषण उल्लास', 'शिवराज भूषण', 'दत्रसाल दशक' तथा 'शिवा बावनी'। उनके इन ग्रन्थों में तीन ही प्रकाश में आ सके हैं - 'शिवराज भूषण', 'शिवा बावनी' एवं 'छत्रसाल दशक'।

भूषण की रचनाओं के आधार छत्रपति महाराज शिवजी हैं और उन्होंने अपना समग्र रचनात्मक कौशल अपने मुक्तक छन्दों के माध्यम से इसी क्षत्रपति को सौंप दिया था।

'शिवराज भूषण' में युद्ध शैर्य चेतना मुख्य है, साथ ही साथ अन्य भावों की भी कविताएँ लिखी गई हैं। दस छन्दों में लिखी उनकी प्रसिद्ध रचना 'छत्रसाल दशक' तथा महाराज शिवजी पर लिखे उनके बावन छन्दों में 'शिवराज बावनी' हिन्दी की वीररस प्रधान रचना परंपरा की अक्षय निधि है।

हिन्दी की वीररस प्रधान काव्य परंपरा के अंतर्गत उनकी तुलना में रीतिकाल का अन्य कोई कवि उनके समानान्तर नहीं उहरता ।

छत्रसाल - प्रशस्ति

(१) निकसत म्यान तें मचूखें प्रलैभानु कैसी,
फारैं तमतोम से गयंदन के जाल को ।
लागति लपाटि कंठ बैरिन के नागिनि सी,
रुद्रहिं रिझावै दै दै मुंडन के माल को ।
लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को ।
प्रतिफट कटक कटीले केते काटि काटि,
कालिका सी किलकि कलेऊ देति काल को ॥

शब्दार्थ

मचूखें - किरणों, तमतोम - अंधकार समूह, गयंदन - हाथी के झुंड, कखाल - तलवार
भावार्थ

महाकवि भूषण महाराज छत्रसाल सिंह के तलवार का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करते हुए कहते हैं कि – हे महाराज छत्रसाल ! म्यान से निकलते ही आपकी तलवार की चमक भरी किरणें प्रलयकालीन सूर्य की किरणों की भाँति चमक पड़ती है और अंधकार समूह रूपी हाथियों के झुंड को क्षण में ही विदीर्ण कर देती हैं । यह आपके शत्रुओं के कंठ पर नागिन जैसी त्वरा से लगती है और उनके कंठ की मालाओं का दान कर-करके भगवान रुद्र को रिझाती (प्रसन्न करती) है । हे महाबहुवली ! हे पृथ्वी के स्वामी छत्रसाल! मैं तुम्हारी तलवार के शौर्य का कहाँ तक वर्णन करूँ । यह तेरी तलवार युद्धभूमि में एक-एक भयंकर शत्रु को काट-काटकर दुर्गा देवी की भाँति आनन्दित भाव से किलकारी मारती हुई मृत्युदेवता के लिए कलेवा (प्रातः काल का नाश्ता) देती है।

विशेष – अत्युक्ति अलंकार का कवि 'खड़ग प्रशस्ति' प्रकारान्तर से छत्रसाल के पराक्रम के वर्णना के लिए उपभोग करता है । रूपक अलंकार इसमें अत्युक्ति अलंकार का सहायक अलंकार है ।

(२) भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी-सी,
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के ।
बखतर पखारन बीच धँसि जाति मीन
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के ।
रैयाराव चंपति के छत्रसाल महाराज

भूषण सकै करि बखान को बलन के ।
पच्छी पर छीने ऐसे परे पर छीने बीर
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के ॥

शब्दार्थ

भुजगेस - शेष नाग, दीह - दीर्घ, दारुन - दारुण, भयंकर, बखतर पखारन - लौह विच
तथा लोहे के बने झूले, पच्छी - पक्षी और विपक्षी, बरछी - अस्त्र

भावार्थ

महाकवि भूषण महाराज छत्रसाल सिंह की बरछी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि – आपकी भुजा रूपी सर्पराज शेषनाग की सहचरी सर्पिणी की भाँति यह बरछी आपके भयंकर शत्रु योद्धा समूहों को दौड़ा-दौड़ा कर दंशित करके नष्ट कर देती है । जैसे मछली जल के भवरों के बीच से तैरकर पार हो जाती है । ठीक उसी प्रकार आपकी यह बरछी बखतर (लोहे की बनी हुई पत्तेदार ढाल जो छाती पर बाँधी जाती है) तथा ढालों के बीच धँसकर (हृदय विदीर्ण) कर देती है । हे राजा चम्पत राय के उत्तराधिकारी महाराज छत्रसाल ! महाकवि भूषण कहते हैं कि आपके पराक्रम का वर्णन कौन कर सकता है । आपकी इस बरछी ने पक्षियों की भाँति आपके शत्रुओं के पक्ष को नष्ट कर दिया है । पराजित आपके शत्रुगण पर कटे पक्षी की भाँति पड़े हुए हैं तथा आपकी इस श्रेष्ठ बरछी ने खलों के पक्ष को हमेशा के लिए नष्ट कर दिया है ।

विशेष – अत्युक्ति अलंकार का प्रयोग किया है । भुज भुजगेस दलन को रूपक 'ज्यों जलन के' पद में उदाहरण अलंकार है । पच्छी तथा पर, 'बरछीने' में यमक अलंकार है ।

MODULE III

ALANKARAS AND CHANDAS - DEFINITION AND USAGE

अलंकार

जैसे रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा आदि में सुन्दरता सबको प्रिय है, वैसे ही उक्ति को भी सुन्दर कर्णप्रिय तथा अर्थसौष्ठव से युक्त शब्दों में सुन्दर ढंग से कहना-सुनना सबको रुचिकर है। संस्कृत में 'अलंकृ' धातु का अर्थ है 'भूषित करना'। जो भूषित करे उसे अलंकार कहते हैं। अलंकारों से उक्ति की शोभा बढ़ जाती है। तभी काव्य की शोभा करनेवाले धर्मों को अलंकार कहते हैं। अलंकारों के सहारे से कविता अपना प्रभाव बहुत कुछ बढ़ाती है।

अलंकार के भेद

शब्द और अर्थ के आधार पर अलंकारों के दो मुख्य भेद हो जाते हैं।

१. शब्द-संबन्धी चमत्कार से युक्त, जिन्हें शब्दालंकार कहते हैं।

२. अर्थ-संबन्धी विशेषता उत्पन्न करनेवाले, जिन्हें अर्थालंकार कहते हैं।

जहाँ शब्द और अर्थ दोनों (उभय) में विशेषता हो वहाँ उभयालंकार भी माना जाता है।

अलंकार असंख्य है। यहाँ उनमें कुछ विशिष्ट अलंकारों को ही पाठ्य-विषय में रख दिया है।

शब्दालंकार और अर्थालंकार

शब्दालंकार वे हैं जिनमें केवल विशेष शब्दों के कारण रचना में सुन्दरता आती है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, वीप्सा, श्लेष, वक्रोक्ति आदि प्रमुख हैं।

अर्थ से अलंकरण करके काव्य लिखे जाने से अर्थालंकार का प्रयोग माना जाता है। उपमा, व्यतिरेक आदि इसके लिए उदाहरण है।

१. अनुप्रास अलंकार

जब वाक्य के पद (शब्द) में एक या कई व्यंजन एक से अधिक बार एक ही क्रम से आवें तब उसे अनुप्रास कहता है।

उदा: कल कल कोमल कुसुम कुंज पर मधु बरसानेवाला कौन ?

यहाँ कल, कोमल, कुसुम, कुंज और कौन में क्रमशः 'अ', 'ओ', 'उ', 'उ' और 'ओ' स्वरों से युक्त 'क्' व्यंजन की आवृत्ति हुई है। इन सब शब्दों में स्वर भिन्न है, किन्तु व्यंजन समान है। दूसरे वह व्यंजन प्रत्येक शब्द (एक ही क्रम में) का पहला अक्षर है। इसलिए इस उक्ति में अनुप्रास अलंकार है।

अनुप्रास अलंकार के पाँच भेद होते हैं – छेक, वृत्ति, श्रुति, लाट और अन्तय । इसमें लाटानुप्रास में, वाक्य में शब्द दोहराये जाते हैं, शेष चार में शब्दों में वर्ण की आवृत्ति होती है ।

(क) छेकानुप्रास

छेकानुप्रास में एक व अनेक वर्णों का दो बार प्रयोग होता है । जैसे – ‘बनती है मुस्कान तुम्हारी शीतल शशि लेखा’ । इसमें शीतल और शशि में ‘श’ का प्रयोग दो बार हुआ है । इन दोनों शब्दों में ‘श’ पहला अक्षर है ।

(ख) वृत्यानुप्रास

वृत्तियों के अनुसार शब्दों में एक अथवा अनेक वर्णों की समता कई बार होने से वृत्ति अनुप्रास (वृत्यानुप्रास) होता है ।

उदा: चारु चन्द्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल-थम में ।

इसमें ‘च’ वर्ण तीन बार चारु, चन्द्र, चंचल शब्दों के आरंभ में और ‘ल’ वर्ण चार बार चंचल, खेल, जल, थल शब्दों के अंत में प्रयुक्त हुआ है । इसलिए यहाँ वृत्यानुप्रास है ।

(ग) लाटानुप्रास

इसमें ऐसे शब्द या वाक्य दुबारा आते हैं जिसका अर्थ तो एक ही होता है, किन्तु अन्वय करने से पूरी उक्ति का अर्थ भिन्न हो जाता है । जैसे –

पराधीन जो जन नहीं स्वर्ग नरक ता हेतु ।

पराधीन जो जन नहीं स्वर्ग नरक ता हेतु । (वियोगी हरि)

इस दोहे में पहले और दूसरे चरण से तीसरे और चौथे चरण के शब्दों में कुछ भी भिन्नता नहीं है । उनके शब्दों के अर्थ भी समान ही हैं । परन्तु अन्वय करने से अर्थ भिन्न होता है । पहले दल का अर्थ है – जो जन पराधीन है, ता हेतु (उसके लिए) स्वर्ग नहीं नरक मिलेगा । दूसरे दल का अर्थ है – जो जन पराधीन नहीं है, ता हेतु (उसके लिए) नरक भी स्वर्ग समान है ।

(घ) श्रुत्यानुप्रास

मुख के भीतर किसी एक ही स्थान से उच्चरित होनेवाले वर्णों की आवृत्ति होने पर श्रुत्यानुप्रास होता है ।

उदा: पुनि मुनि गन दुहु भाइन बंदे, अभिमत आसिस पाइ अनंदे ।

इस पंक्ति में प, म, भ ओष्ठ्य वर्णों की आवृत्ति हुई है ।

(ड) अन्त्यानुप्रास

छन्द के चरण के अंत में समाज वर्ण आने से अन्त्यानुप्रास होता है ।

उदा: धीरे धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय ।

माली सींचौ सौ घडा ऋतु आये फल होय ।

इस छन्द के प्रत्येक चरण के अंत में समान वर्ग (होय) मैत्री अथवा अन्त्यानुप्रास अलंकार है ।

२. श्लेष अलंकार

जब कोई शब्द एक ही बार प्रयुक्त हो और उसके दो या अधिक अर्थ निकलते हों तब 'श्लेष अलंकार' होता है । श्लेष शब्द का अर्थ है 'चिपका हुआ' । श्लेष के लिए प्रयोग किये गये शब्द में एक से अधिक अर्थ चिपके रहते हैं । श्लेष दो प्रकार का होता है ।

(अ) शब्द श्लेष

(आ) अर्थ श्लेष

शब्द श्लेष में एक शब्द के कई अर्थ होते हैं । यदि उसके स्थान पर उसका पर्याय रख दिया जाये तो श्लेष नहीं रहता । अर्थ श्लेष में शब्दों का एक ही अर्थ होता है जो दो या अधिक पक्षों में लागू होता है और उसके पर्यायवाचक शब्दों के प्रयुक्त होने पर भी ये अर्थ बने रहते हैं ।

शब्द श्लेष के दो भेद हैं ।

(क) भंगपद शब्द श्लेष

जहाँ शब्द को भंग करने पर उसमें से दूसरा अर्थ निकलता है तो वहाँ भंगपद श्लेष होता है ।

उदा: भूषण सदृश उडगन हुए मुख-चन्द्र-शोभा छा रही ।

विमलांबरा रजनी बधू अभिसारिका सी जा रही ।

इसमें विमलांबरा (विमल + अम्बरा) शब्द के अम्बरा अंश के 'वस्त्रवाली' तथा 'आकाशवाली' ये दो अर्थ हैं ।

(ख) अभंगपद शब्द श्लेष

जहाँ शब्द के भंग किये बिना अर्थ भिन्नता स्पष्ट हो जाय, वहाँ अभंगपद शब्द श्लेष है ।

उदा: जो पहाड़ को तोड़-फोड़कर बाहर बढ़ता है

निर्मल जीवन वही सदा जो आगे बढ़ता ।

यहाँ जीवन शब्द के दो अर्थ होते हैं – पहला अर्थ पानी और दूसरा जीवन (ज़िन्दगी) । पहाड़ को तोड़कर बाहर निकलनेवाला जीवन (पानी) निर्मल हुआ करता है । उसी प्रकार दूसरा अर्थ है कि

मनुष्य का वही जीवन निर्मल है जो पहाड़ जैसे विपत्तियों को भी रौंदकर आगे बढ़ता है । अतः यहाँ 'जीवन' शब्द में अभंगपद शब्द श्लेष अलंकार है ।

३. वक्रोक्ति अलंकार

जहाँ किसी उक्ति में वक्ता के अभिप्रेत आशय से भिन्न अर्थ की कल्पना की जाय वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है । वक्रोक्ति के दो भेद होते हैं – (क) श्लेष वक्रोक्ति (ख) काकु वक्रोक्ति । वक्रोक्ति का अर्थ है टेढ़ी उक्ति अर्थात् उक्ति को टेढ़ करना ।

(क) श्लेष वक्रोक्ति

कभी किसी शब्द के श्लेष से कई अर्थ होने के कारण भिन्न अर्थ निकाल दिया जाता है तब वहाँ श्लेष वक्रोक्ति है ।

उदा: (श्रीकृष्ण राधा के पास गये । उनसे उन्होंने द्वार खोलने को कहा)

राधा – को तुम हो, इत आये कहाँ

श्रीकृष्ण – घनश्याम

(राधा ने श्लेष से घनश्याम का अर्थ बादल लगाकर कहा)

हो ! तोकितहूँ बरसो ।

अर्थात् बादल का यहाँ क्या काम ? यदि बादल हो तो जाकर कहीं जल बरसाओ ।

(ख) काकु वक्रोक्ति

कभी कहे हुए वाक्य का कंठ की ध्वनि, स्वर विकार या अन्य किसी ढंग से अन्य अर्थ निकलता है तो वहाँ काकु वक्रोक्ति है ।

उदा: श्रीरामचन्द्र सीता को अपने साथ वन नहीं ले जाना चाहते थे ।

उन्होंने कहा – तुम सुकुमारी हो, इससे वनवास के योग्य नहीं हो ।

इस पर सीता कहती हैं, मैं सुकुमारी, नाथ बन जोगू ?

अर्थात् मैं सुकुमारी हूँ और आप मानो सुकुमार नहीं, कठोर है और इससे वनवास के योग्य हैं । ऐसा कहना ठीक नहीं । आप भी तो मेरी ही भाँति सुकुमार हैं । यदि आप वनवास कर सकते हैं, तो मैं भी कर सकती हूँ । यहाँ कंठ ध्वनि से दूसरा अर्थ निकाला गया है ।

४. उपमा अलंकार

जब हम किसी वस्तु का वर्णन करके उससे अधिक प्रसिद्ध किसी वस्तु से उसकी समानता करते हैं तब उपमा अलंकार होता है ।

उदा: दमयन्ती रति के समान सुन्दरी है – यहाँ दमयन्ती की सुन्दरता के बारे में कहा गया है । उसको बढ़ाकर कहने के लिए सुन्दरता के लिए संसार में प्रसिद्ध रति को चुन लिया गया है ।

उपमा के अंग

१. उपमेय – जिसकी तुलना की जाय उसे उपमेय कहते हैं।

उदा: दमयन्ती

२. उपमान – जिससे तुलना की जाय उसे उपमान कहते हैं।

उदा: रति

३. असाधारण धर्म – जिस गुण में तुलना की जाय उसे असाधारण धर्म कहते हैं।

उदा: सुन्दरता

४. वाचक – जिस शब्द से तुलना प्रकट हो, उसे वाचक कहते हैं।

उदा: सुन्दरता

उपमा के भेद

(क) पूर्णोपमा – उपमा के चारों अंग उपस्थित होने पर पूर्णोपमा है।

उदा: दमयन्ती रति के समान सुन्दरी है।

(ख) लुप्तोपमा – जब उपमा के चार अंगों में एक नहीं होता तब लुप्तोपमा है।

उदा: दमयन्ती रति के समान है।

जो अंग लुप्त होता है उसको पहले रखकर लुप्तोपमा का नाम रखा जाता है। जैसे – धर्मलुप्तोपमा, उपमेयलुप्तोपमा आदि।

उदा: भोगी कुसुमायुध योगी सा बना दृष्टिगत होता है।

इसमें कुसुमायुध - उपमेय, योगी - उपमान और सा - वाचक हैं किन्तु धर्म नहीं है। धर्म लुप्त होने पर यहाँ धर्मलुप्तोपमा है।

(ग) मालोपमा – जब उपमेय की समता के लिए एक साथ अनेक उपमान लाये जाते हैं तब मालोपमा है।

उदा: बिना प्राण के जैसे गात, बिना चन्द्र के जैसे रात।

बिना नीर के जैसे ताल, बिना स्वामि के जैसे बाल

यहाँ स्वामिविहीन बालिका (स्त्री) की समता (१) निर्जीव देह, (२) चन्द्र-विहीन (अंधेरी) रात और (३) जल-रहित तालाब से की गयी है। इसलिए यहाँ मालोपमा है।

इस उदाहरण में उपमेय की सब उपमानों से एक ही साधारण धर्म में समता की गई है। इसलिए यह एकधर्मा मालोपमा है। परन्तु जब उपमेय की भिन्न-भिन्न उपमानों से भिन्न साधारण धर्मों में समता की जाय तब भिन्न धर्मा-मालोपमा है जैसे,

मेरी एक माँ थी। मसजिद की तरह बूढ़ी, आम की तरह पकी, दया की तरह उदार, दुआ की तरह मददगार, प्रकृति की तरह करुणामयी, खुदा की तरह प्यारी और कुरानपाक की तरह पाक।

(घ) रसनोपमा – उपमेय और उपमानों की ऐसी माला होती है, जिसमें पहले कहा हुआ उपमेय क्रमशः आगे उपमान होता जाय । अर्थात् पहला उपमेय दूसरे उपमेय का उपमान हो जाय, दूसरा उपमेय तीसरे उपमेय का उपमान बन जाय । इसी तरह का क्रम चलता जाय तब रसनोपमा या गमनोपमा अलंकार है ।

उदा: तुम्हारे वचनों के समान मधुर तुम्हारी मूर्ति है, मूर्ति के समान तुम्हारी मधुर कीर्ति संसार में फैल रही है, और कीर्ति के समान ही तुम्हारी नीति जगतीतल पर व्याप्त हो रही है ।

इस उदाहरण में पहला उपमेय 'मूर्ति' आगे चलकर 'कीर्ति' का उपमान बन जाता है, फिर 'कीर्ति' उपमेय 'नीति' का उपमान बन जाता है । इससे यहाँ रसनोपमा अलंकार है ।

(ङ) उपमेयोपमा – जिस उपमेय की समताजिसउपमान से की जाय यदि वह उपमानतुरन्त ही उपमेय होकर पहले उपमेय को अपना उपमान बना ले तो उपमेयोपमा अलंकार है । जैसे –

'भरत राम सम राम भरत सम ।' इसमें भरत और राम परस्पर एक दूसरे के उपमेय और उपमान हैं ।

अनन्वय या अनन्वोपमा

इन पाँच भेदों के अलावा एक और भेद भी है – अनन्वय । जब उपमेय की समता देने के लिए उपमान होता ही नहीं, तब उपमेय के समान उपमेय ही है । तब अनन्वय या अनन्वोपमा है । जैसे –

'भरत भरत सम जानि ।' इस वाक्य में भरत का उपमान भरत ही बतलाया गया है ।

५. उत्प्रेक्षा अलंकार

जब उपमेय में उपमान से भिन्नता जानते हुए भी उपमान की संभावना की जाती है तब उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

उदा: 'मुख मानो चन्द्रमा है' । इस कथन में यह निश्चय नहीं है कि मुख चन्द्रमा है या उसके समान है । यह 'मानो' द्वारा आरोपित किया गया है ।

उत्प्रेक्षा के भेद

(१) वस्तु उत्प्रेक्षा

जहाँ एक वस्तु में दूसरे वस्तु के आरोप करने की संभावना की जाती है, वहाँ वस्तु उत्प्रेक्षा अलंकार है । श्रीकृष्ण के श्याम शरीर पर पीताम्बर ऐसा जान पड़ता है मानो नीलम के पर्वत पर प्रातःकालीन सूर्य की किरणें पड़ रही हो । यहाँ श्रीकृष्ण के शरीर और पीताम्बर में नीलम के पर्वत और सूर्य की किरणों का आरोप करने से वस्तु उत्प्रेक्षा है ।

(२) हेतु उत्प्रेक्षा

वास्तव में कारण न होने पर भी कारण की संभावना की जाती है वहाँ हेतु उत्प्रेक्षा है ।

उदा: पाई अपूर्व थिरता मृदु वायु ने थी,

मानो अचंचल विमोहित हो बनी थी ।

यहाँ वायु के अचंचल होने के कारण की संभावना यह की गयी है कि, वो विमोहित हो गयी है । वास्तव में निर्जीव वस्तु विमोहित नहीं हो सकती । यहाँ कारण न होने पर भी कारण की संभावना की गयी है, इसलिए हेतु उत्प्रेक्षा है ।

(३) फलोत्प्रेक्षा

वास्तव में फल न होने पर भी उसे ही वास्तविक फल माना जाय, तब फलोत्प्रेक्षा है ।

उदा: निश्चय ही पिनाक ने स्व-पाप नष्ट करने को

राम-कर तीर्थ पा शरीर निज छोड़ा है ।

यहाँ पिनाक (शिवधनुष) के टूटने का हेतु राम का बल नहीं कहा गया । उसके टूटने में यह अभिप्राय (फल) आरोपित किया गया है कि उसने अपने पाप मिटाने के लिए स्वयं अपने को भंग करवा डाला । इसलिए यहाँ फलोत्प्रेक्षा अलंकार है ।

६. रूपक अलंकार

जब उपमेय को उपमान के रूप में दिखाया जाता है तब रूपक अलंकार है ।

उदा: 'मुख चन्द्र है' । यहाँ उपमेय और उपमान को भिन्न-भिन्न अस्तित्व नहीं है । दोनों एक है ।

सक शब्द का अर्थ होता है रूप धारण करना । इस अलंकार में उपमेय उपमान का रूप धारण करता है । इससे इसका नाम रूपक पड़ा है । रूपक के दो भेद हैं ।

(१) अभेद रूपक

जहाँ उपमेय और उपमान में भेद नहीं होता वहाँ अभेद रूपक है । जैसे – मुख चन्द्र, चरण कमल ।

(२) तद्रूप रूपक

जब उपमेय और उपमान में भेद रखते हुए भी किसी गुण कर्म आदि के कारण उनमें एकरूपता स्थापित की जाती है वहाँ तद्रूप रूपक है ।

उदा: मुख चन्द्रमा है ।

यहाँ मुख को दूसरा चन्द्र कहें तो उपमेय और उपमान की भिन्नता मानते हुए भी उपमेय को उपमान का रूप दे दिया है । इसलिए तद्रूप रूपक अलंकार है । अभेद रूपक और तद्रूप रूपक के तीन-तीन भेद हैं ।

(क) सम अभेद रूपक और सम तद्रूप रूपक

जब उपमेय और उपमान में कमी या अधिकता न होकर समानता हो तो सम अभेद या सम तद्रूप रूपक है ।

उदा: (१) मुख चन्द्र है । (सम अभेद रूपक)

(२) मुख दूसरा चन्द्र है । (सम तद्रूप रूपक)

इन उदाहरणों में 'मुख' और 'चन्द्रमा' में समानता दिखायी गयी है ।

(ख) अधिक अभेद रूपक और अधिक तद्रूप रूपक

जब उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ अधिकताया श्रेष्ठता दिखायी पड़ती है तब अधिक अभेद या अधिक तद्रूप रूपक अलंकार है ।

उदा: (१) मुख निष्कलंक चन्द्रमा है । (अधिक अभेद रूपक)

(२) मुख दूसरा निष्कलंक चन्द्रमा है । (अधिक तद्रूप रूपक)

इन उदाहरणों में उपमेय (मुख) में उपमान (चन्द्रमा) की अपेक्षा 'निष्कलंकता' की विशिष्टता दिखायी गयी है ।

(ग) न्यून अभेद रूपक और न्यून तद्रूप रूपक

जब उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ न्यूनता (कमी) दिखायी जाती है तब उसे न्यून अभेद या न्यून तद्रूप रूपक कहते हैं ।

उदा: (१) उसका मुख घर को प्रकाशित करनेवाला चन्द्रमा । (न्यून अभेद रूपक)

(२) उसका मुख घर को प्रकाशित करनेवाला दूसरा चन्द्रमा है । (न्यून तद्रूप रूपक)

इन दोनों उदाहरणों में मुख को घर को प्रकाशित करनेवाला चन्द्रमा कहकर उसमें चन्द्रमा से इस प्रकार न्यूनता दिखायी गयी है कि चन्द्रमा से घर-बाहर, पृथ्वी-आकाश सब कुछ प्रकाशित होता है, किन्तु मुख से केवल घर प्रकाशित होता है ।

सम अभेद रूपक के भेद

सम अभेद रूपक के और भी तीन भेद हैं ।

(क) सांग रूपक या सामयव

जहाँ उपमेय पर उपमान का आरोप उसके समस्त अंगों के साथ किया जाता है, सांग रूपक होता है । तात्पर्य यह है कि सांग रूपक में अनेक रूपक होते हैं जिनके उपमेय और उपमान पहले उपमेय और उपमान के अंग की भाँति होते हैं ।

उदा: बीती विभारी जाग री ।

अम्बर पनघट में डूबो रही, तारा-घट उषा नागरी ।

यहाँ उषा में नागरी का आरोप, अम्बर में पनघट का और तारा में घट (अंगों) के आरोप के साथ सांग रूपक है ।

(ख) निरंग या निरवयव रूपकरूपक

इसमें उपमेय में उपमान का आरोप होता है लेकिन उसके अंगों का आरोप नहीं होता ।

उदा: सुन कर जयद्रथ का कथन हरि को हँसी कुछ आ गयी ।

गम्भीर श्यामल मेघ में विद्युच्छटा-सी छा गयी ।

इसमें केवल हरि (श्रीकृष्ण) की हँसी में विद्युत की छटा (बिजली का चमक) का आरोप किया गया है और हँसी तथा बिजली दोनों के विविध अंगों में एकरूपता नहीं स्थापित की गयी ।

(ग) परंपरित रूपक

इसमें एक रूपक के द्वारा दूसरे रूपक की पुष्टि होती है । इसमें पहला रूपक नही तो दूसरे का निर्वाह हो ही नहीं सकता ।

उदा: 'रामकथा कलि-पन्नग भरनी' में दो रूपक है ।

यहाँ रामकथा और भरनी प्रमुख रूपक है । कलि और पन्नग अप्रधान रूपक है । एक प्रधान रूपक पर दूसरा अप्रधान रूपक निर्भर है ।

७. अतिशयोक्ति अलंकार

जहाँ किसी की अत्यन्त प्रशंसा के लिए बहुत बढ़ा-चढ़ाकर, लोक-सीमा के बाहर की बात कही जाय वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है ।

'कनक लता पर चन्द्रमा धरे धनुष द्वै बान' । यहाँ स्त्री की वर्णना बढ़ा-चढ़ाकर हुई है । यहाँ कनक लता, चन्द्रमा, धनुष और बाण क्रमशः स्त्री (सुन्दरी), उसकी मुख, भौहें और नेत्रों का उपमान हैं ।

अतिशयोक्ति के सात भेद हैं ।

(क) रूपकातिशयोक्ति

जब उपमेय और उपमान में इतना अभेद स्थापित किया जाता है कि उपमेय का अस्तित्व ही लुप्त होता है, वहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है ।

उदा: किसी को बहुत दिनों के बाद देखकर कोई कहता है –

अहा ! आज गूलर का फूल दिखाई पड़ा ।

गूलर का फूल – अलभ्य पदार्थ

यहाँ उपमान द्वारा ही उपमेय का पूर्ण बोध हुआ है ।

(ख) भेदकातिशयोक्ति

उपमेय और उपमान में वास्तव में कुछ भेद न होने पर भी भेद का कथन होता है, वहाँ भेदकातिशयोक्ति है । यह भेद – और, और ही, दूसरा ही, न्यारा, निराला, अन्य, अनोखा आदि शब्दों के द्वारा बतलाया जाता है । जैसे –

‘बह चितवनि और कछू जिहि बस होत सुजान’ ।

ये चितवनि (आँखें) कुछ और है । यहाँ साधारण दृष्टि होने पर भी कुछ भिन्न बताया है । यहाँ ‘जिस’ चितवन का उल्लेख हो रहा है वह साधारण चितवन होने पर भी उस ‘और’ शब्द द्वारा भिन्न बतलायी गई है ।

(ग) संबन्धातिशयोक्ति

जहाँ उपमेय और उपमान में वास्तव में संबन्ध न होने पर भी संबन्ध की स्थापना की जाती है अथवा अयोग्य में योग्यता बतलायी जाती है, वहाँ संबन्धातिशयोक्ति होती है ।

उदा: गुलाब की पंखुड़ी से शरीर पर खरोच लग जायेगी ।

यहाँ गुलाब की पंखुड़ी (**Petals**) से शरीर पर खरोच पड़ने की संभावना न होने पर भी संभावना बताई गई है ।

(घ) असंबन्धातिशयोक्ति

जब दो वस्तुओं में संबन्ध होने पर भी उसका निषेध किया जाता है अथवा किसी को योग्य होने पर भी अयोग्य बताया जाता है, तब असंबन्धातिशयोक्ति है ।

उदा: तो कर आने कल्पतरु क्यों पावै सनमान ?

इसमें सम्मान करने योग्य कल्पतरु को सम्मान के अयोग्य ठहराया गया है और ऐसा करके हाथ की दानशीलता का उत्कर्ष सूचित किया गया है ।

(ड) अक्रमातिशयोक्ति

कारण के कुछ बाद कार्य होने का सामान्य विधान है। परन्तु जहाँ कारण और कार्य एक साथ हो जाय, उनमें नियमानुसार कुछ अन्तर न पड़े, वहाँ अक्रमातिशयोक्ति होती है। नियमानुसार कुछ अन्तर न पड़े, वहाँ अक्रमातिशयोक्ति होती है।

उदा: चले तुम्हारे बाण धनुष से, रिपु के प्राण चले चट तन से।

यहाँ बाण चलने का और शत्रु के प्राण जाने का काम एक साथ हो गया है। दोनों में कारण और कार्य का क्रम न होने पर अक्रमातिशयोक्ति है।

(च) चपलातिशयोक्ति

जब कारण का ज्ञान होते ही, उसको देखते या सुनते ही कार्य संपन्न हो जाता है तब चपलातिशयोक्ति है।

उदा: म्यान से निकलते तुम्हारी तलवार देख,

शत्रु सब ढेर हो गये तुरन्त ही वहाँ।

यहाँ तलवार के निकलने में कुछ देर न हुई और सब शत्रु मर गये। कारण का आर्विभाव होते ही कार्य हो गया।

(छ) अत्यन्तातिशयोक्ति

जब कारण के होने के पहले ही कार्य हो जाय, तब अत्यन्तातिशयोक्ति है।

उदा: हनुमान की पूँछ में आग न लग पायी थी कि सारी लंका जलकर भस्म हो गयी।

यहाँ 'आग लगना' रूपी कारण होने के पहले ही लंका का जलने का कार्य पूरा हो गया है।

८. विरोधाभास अलंकार

जिस उक्ति में विरोध-सा प्रतीत होता है, लेकिन कोई विरोध न होता है (विरोध का आभास मात्र है) वहाँ विरोधाभास अलंकार है।

'जो जन करते हरि नमन, होते वे उन्नत सदा'। यहाँ दो विरोधी क्रियायें – नमन करना (झुकना) और उन्नत होना (उठना) – एक साथ आई हैं। इसलिए विरोधाभास अलंकार है।

छन्द शास्त्र

प्राचीन काल से ही कविता पद्य (व छन्द बद्ध) होती आयी है। पद्यबद्ध होने से कविता प्रवाहमयी तथा गेय हो जाती है। तब उसके पढ़ने व सुनने में कानों को अधिक आनन्द मिलता है। मात्रा व वर्ण,

व दोनों के निश्चित क्रम, व माप व संख्या के साथ ही विराम गति, व लय तथा तुक आदि के नियमों से संपन्न रचना को 'पद्य' कहते हैं ।

पद्य और छन्द समानार्थक शब्द हैं । इसलिए जिस शास्त्र में पद्य व छन्द की रचना के नियमों और भेद, नाम, लक्षण आदि के संबन्ध में विचार किया जाता है, उसे छन्दःशास्त्र कहते हैं ।

पिंगल शास्त्र

ग्रन्थ के रूप में संस्कृत भाषा में छन्दःशास्त्र के सबसे पहले रचयिता पिंगलाचार्य हैं । उनका बनाया हुआ 'पिंगलच्छन्दःसूत्रम्' छन्दःशास्त्र की आदि कृति है । अतः इस शास्त्र के प्रवर्तक के नाम पर इसे 'पिंगल शास्त्र' भी कहते हैं। संस्कृत के बहुत कुछ छन्दों को हिन्दी में भी अपनायी गयी है ।

मात्रा : लघु और गुरु

किसी स्वर के उच्चारण में जो समय लगता है उसकी अवधि को 'मात्रा' कहते हैं । कविता में मात्रा की गणना संबन्धी कुछ नियम हैं ।

१) यदि किसी व्यंजन वर्ण में कोई भी ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ और ऋ) मिला हो तो उसे लघु कहते हैं ।

२) यदि किसी व्यंजन वर्ण में कोई दीर्घ स्वर (आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ) मिला हो तो उसे गुरु कहते हैं ।

पिंगल शास्त्र में ह्रस्व स्वर लघु और दीर्घ संयुक्त स्वर गुरु माने जाते हैं । ह्रस्व स्वरों या उनसे युक्त व्यंजन वर्णों की लघु वर्ण और दीर्घ स्वरों या उनसे उक्त व्यंजन वर्णों को गुरु वर्ण कहते हैं । लघु वर्ण के उच्चारण-काल की एक मात्रा और गुरु के उच्चारण में लगे समय की दो मात्रायें मानी जाती है । कारण, गुरु वर्ण के उच्चारण में लघु वर्ण के उच्चारण की अपेक्षा दोगुना समय लगता है ।

लघु गुरु के चिह्न और नियम

छन्द शास्त्र में लघु और गुरु का संकेत इन दोनों शब्दों के पहले अक्षर क्रमशः 'ल' और 'ग' को माना जाता है । लघु का संकेत चिह्न (१) माना गया है और गुरु का (५) ।

नियम

१. ह्रस्व स्वर तथा उनके मेल से बने हुए व्यंजन वर्ण की एक मात्रा होती है ।

२. दीर्घ स्वर तथा उसके योग से बने व्यंजन वर्ण की दो मात्रायें होती हैं ।

३. चरण का सबसे पहला संयुक्त वर्ण ह्रस्व हो तो उसकी एक मात्रा होती है और दीर्घ हो तो उसकी दो मात्रायें मानी जाती हैं ।

इस सामान्य नियम के अतिरिक्त कविता में कुछ विशेष नियम भी हैं –

- १) संयुक्त वर्ण के पहले का ह्रस्व (लघु) वर्ण प्रायः गुरु माना जाता है । उदा: 'सुगन्ध' में ग वर्ण गुरु माना जाता है।
- २) अनुसार और विसर्ग से युक्त लघु वर्ण भी साधारणतया गुरु माना जाता है । उदा: वंश में 'व' गुरु, दुःख में 'दु' गुरु हैं ।
- ३) कभी-कभी चरण के अंत का लघु वर्ण भी उच्चारण में अधिक समय लगने के कारण गुरु मान लिया जाता है । उस लघु वर्ण का भी दो मात्रायें गिनी जाती हैं ।

उदा: बलाभिमानी धरनी धनेश !

कहो, कहाँ हैं अब वे जनेश ?

उच्चारण में गुरु वर्ण के उच्चारण की भाँति समय लगने के कारण प्रत्येक चरण का अंतिम वर्ण गुरु होता है ।

४) हलन्त शब्द के हल् की मात्रा नहीं गिनी जाती, किन्तु उसके पहले लघु वर्ण हो तो वह गुरु माना जाता है ।

छन्दों के भेद

- १) वर्ण वृत्त (वृत्त) :- जिस छन्द के प्रत्येक चरण व पद में वर्णों की संख्या समान होती है या जिसमें वर्णों के क्रम का नियम होता है उसे वर्ण वृत्त कहते हैं ।
- २) मात्रिक छन्द (जाति) :- मात्रिक छन्द के प्रत्येक चरण में वर्णों की संख्या समान नहीं होती, उसके शब्दों की मात्राओं की संख्या ही एक-सी होती है । यदि प्रत्येक चरण में वर्णों की संख्या समान हो तो वर्णवृत्त और ऐसा न हो तो मात्राओं की संख्या समान हो तो मात्रिक छन्द है ।

गण

वर्ण वृत्त व वृत्त के संबन्ध में जब गण शब्द का प्रयोग होता है तब उसका तात्पर्य होता है तीन अक्षरों का समूह । इस प्रकार के त्रि-वर्ण के समूह कुल आठ हैं । ये हैं –

- | | |
|----------|------------------------|
| (१) म गण | ५५५ (तीनों वर्ण गुरु) |
| (२) न गण | ३३३ (तीनों वर्ण लघु) |
| (३) भ गण | ५३३ (पहला वर्ण गुरु) |
| (४) य गण | ३५५ (पहला वर्ण लघु) |
| (५) ज गण | ३५३ (बीच का वर्ण गुरु) |

- (६) र गण ५१५ (बीच का वर्ण लघु)
 (७) स गण ११५ (अन्त का वर्ण गुरु)
 (८) त गण ५५१ (अन्त का वर्ण लघु)

गणों के नाम तो 'मनभयजरसत' शब्द याद कर लेने से न भूलेंगे ।

दोहा

विषम चरन तेरह कला, आदि जगण नहि देत ।

ग्यारह मात्र सम चरन, गुरु न अंत में लेत ॥

(विषम - पहला और तीसरा चरण, सम - दूसरा और चौथा चरण)

दोहे के लिए विषम चरणों में तेरह-तेरह (१३) मात्रायें चाहिए और सम चरणों में ग्यारह-ग्यारह (११) भी होनी चाहिए । विषम चरणों के प्रारंभ में 'ज' गण नहीं होना चाहिए । सम चरणों के अन्त में 'गुरु' नहीं होना चाहिए । इस प्रकार दोहे के प्रत्येक दल में चौबीस (२४) मात्रायें रहती हैं ।

५ ११ १ १११ ५ १ ५ १५ १ १ १ ५ १

उदा : भावुक निजपद-पदम के । मधु से अब भरपूर ।

दो ये आँखें आँजने । तिमिर जाल हो दूर ॥

इस उदाहरण के पहले और तीसरे चरण में तेरह-तेरह मात्रायें हैं । विषम चरण के आरंभ में 'ज' गण भी नहीं है । समचरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्रायें हैं । समचरणों के अन्त में 'गुरु' भी नहीं है । इसी कारण दोहा छन्द है ।

रोला

'रोला कब चौबीस । रुद्र सरिता यति धारी ।'

रोला में कुल चौबीस (२४) मात्रायें हैं । इसके हर एक चरण में रुद्र (११ मात्रायें), सरिता (१३ मात्रायें) होनी चाहिए । ग्यारहवीं मात्रा स्थान पर यति की ज़रूरत होती है । (यति का अर्थ है विराम या ठहराव)

५ ५ ५ ५ १५ १ ५ ५ ५ ११ ५ ५

उदा : जीती जाती हुई । जिन्होंने भारत बाजी

निज बल से दल मेट । विरोधी सबल कुराजी ।

इस कविता के प्रत्येक चरण में ग्यारह और तेरह के विराम से कुल चौबीस मात्रायें हैं । ग्यारहवीं मात्रा स्थान पर यति भी है ।

चौपाई

‘कल सोरह ज त तजि चौपाई ।’

चौपाई के हर एक चरण में सोलह (१६) मात्रायें होती हैं । प्रत्येक चरण के अन्त में ज गण (१५१), त गण (५५१) नहीं होना चाहिए ।

५५१ ५ १ १ ५११ १ १ १ १

उदा : कंकन किंकन नूपुर धुनि सुनि

कहत लखन सन राम हृदय गुनि ।

इस पंक्ति के प्रत्येक चरण में सोलह मात्रायें हैं ।

सोरठा

‘तेरह सम विषमेश । दोहा - उलटा सोरठा ।’

सोरठा छन्द के विषम चरणों में (पहला और तीसरा) ग्यारह-ग्यारह मात्रायें होनी चाहिए । इसी प्रकार समचरणों में (दूसरा और चौथा) तेरह-तेरह मात्रायें भी होनी चाहिए । दोहा छन्द के लक्षण को उल्टा कर देने से सोरठा छन्द मिलेगा ।

५ ५ ११ ११ ५ १ ५ १ ५ १ ५ ५ १ १ १

उदा : नीलोपल तन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक ।

सुनिअ तासु गुन ग्राम, जासु नाम अद्य खग बधिक । (मानस)

इस उदाहरण के विषम चरणों में ग्यारह-ग्यारह मात्रायें हैं, समचरण में तेरह-तेरह मात्रायें हैं । प्रत्येक दल में कुल चौबीस मात्रायें हैं ।

इन्द्रवज्रा (वर्ण वृत्त)

‘ता ता ज ग ग शुभ इन्द्रवज्रा’

इसमें दो त गण (५५१, ५५१), ज गण (१५१) और दो गुरु (५५) इस प्रकार के प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्णों का इन्द्रवज्रा होता है ।

५ ५ १ ५ ५ १ ५ १ ५ ५

उदा : मैं जो न / या ग्रन्थ / विलोक / ता हूँ

भाता मु/झे सो न / व मित्र / सा है

मालिनी

‘न न म य य जुटा के मालिनी रम्य गाओ’

न न म य य अर्थात् दो न गण (१११, १११), म ण (५५५) और दो य गण (१५५, १५५) - इस प्रकार प्रत्येक चरण में पन्द्रह वर्णों का मालिनी वृत्त होता है । इसमें आठवें वर्ण पर यति होती है, जैसे -

११ १ ११ १ ५ ५ ५ १ ५ ५ १ ५ ५

गृहति / मिर नी / राशा का/ समाकी / र्ण जो था,

निज मुख - दुति / से है,जी / उसे ध्वं / सकारी ।

प्रत्येक चरण में न, न, म, य, य, १५ वर्ण, आठवें वर्ण पर यति है ।

वसन्ततिलका

‘जानो बसन्ततिलका त भ जा गो गा’

त भ ज ज ग गण और दो गुरु - इस प्रकार प्रत्येक चरण में चौदह (१४) वर्णों का वसन्ततिलका होता है । आठवें वर्ण पर यति होती है, जैसे -

५ ५ १ ५ ११ १ ५ १ १५ १ ५ ५

भू में र / मी शर / द की, क/ मनीय / ता थी

नील भ/नन्त न / भ निर्म / ल हो ग/या था

मन्दाक्रान्ता

‘मन्दाक्रान्ता म भ न त त गा गा श्रुती राग बाजी’

म, भ, न, त, ग, ग अर्थात् म गण, भ गण, न गण, त गण, त गण और दो गुरु इस तरह के प्रत्येक चरण में सत्रह (१७) वर्णों का मन्दाक्रान्ता होता है । इसमें ४, ६ और ७ वर्णों पर यति होती है, जैसे -

५ ५ ५ ५ ११ ११ १ ५ ५ १ ५ ५ १ ५ ५

फूजी डा /लें, सुकु / सुम म /यी नीप / की देख/ आँखें

आ जाती/है, मुर/लिधर /की, मोहि/नी मूर्ति / आगे

MODULE IV

SABDASAKTHI - DEFINITION AND USAGE

शब्द-शक्ति

किसी उक्ति में शब्द, अर्थ दोनों अनिवार्य हैं। शब्दविहीन अर्थ और अर्थविहीन शब्द की कल्पना की ही नहीं जा सकती। शब्द और अर्थ एक दूसरे से मिले-जुले रहते हैं। शब्द का अर्थ प्रसंग के अनुसार लिया जाता है। किसी मूर्ख और विवेक-शून्य पुरुष को कोई बात समझाते-समझाते जब ऊब और खीझ कर कोई कह बैठता है कि, 'तुम तो निरे बैल हो' तो तब बैल अपना सामान्य अर्थ में न होकर एक विशेष अर्थ में है, जिसका अर्थ होगा 'बुद्धिहीनता'। इसी प्रकार 'उल्लू' शब्द का विशेष अर्थ है 'अत्यन्त मूर्ख'। अस्तु वाक्य के अन्तर्गत किसी शब्द का मुख्य या अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है। अर्थ के तीन भेद माने गये हैं – वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य। इन तीनों का विस्तार के साथ वर्णन निम्न प्रकार से हैं।

१. अभिधा

किसी शब्द को सुनते ही तत्काल उसके साधारण या प्रचलित अर्थ का ही बोध हुआ करता है। इस कार्य को अभिधा कहते हैं। शब्द की जिस शक्ति के कारण शब्द का साधारण या प्रचलित मुख्य अर्थ समझा जाता है, उसे अभिधा शक्ति कहते हैं। अभिधा वाक्य के अन्तर्गत किसी शब्द के केवल मुख्य व संकेतित अर्थ का बोध कराती है। अभिधा का शब्दार्थ है नाम।

२. लक्षणा

'यदि बृहस्पति भी आ जायें तो ऐसे उल्लुओं को नहीं समझ सकते' – इस वाक्य में 'उल्लू' शब्द से (उल्लू की भाँति) अत्यन्त मूर्ख व्यक्ति अभिप्रेत है। यहाँ उल्लू शब्द का अर्थ किसी पक्षि-विशेष नहीं लिया गया किन्तु इसीसे संबन्ध अर्थ लिया गया है। इस प्रकार का अर्थ लेने में मुख्यार्थ या वाच्यार्थ के ग्रहण करने में बाधा उपस्थित हुई, परन्तु इसका जो अर्थ लिया गया है उसका संबन्ध मुख्यार्थ से कुछ लगा हुआ है। जब शब्द का अर्थ वाच्यार्थ के रूप में न होकर किसी रूढ़ि (परंपरा) या विशेष प्रयोजन से लिया जाता है, तो शब्द की उस शक्ति को शब्द शक्ति कही जाती है।

३. व्यंजना

कभी-कभी अभिधा और लक्षणा से वाक्य का अभिप्रेत अर्थ पूरी तरह नहीं खुलता। ऐसी दशा में जिस शक्ति से अभिप्रेत अर्थ तक पहुँच होती है, उसे व्यंजना कहते हैं। अर्थात् अभिधा और लक्षणा के विराम होने पर एक तीसरी अर्थ आ जाता है जिसे व्यंजना कहते हैं।

उदा: 'गाँव में गंगा है' – इसका अर्थ है गंगा तट पर गाँव है। एक और अर्थ है गाँव पवित्र एवं शीतल है या गाँव में गंगा स्नान की सुविधा है।

लक्षण के भेद

१. **रूढ़ लक्षणा :-** रूढ़ लक्षणा वहाँ होती है जहाँ किसी शब्द के नियत या सांकेतिक अर्थ को त्याग कर उससे भिन्न वह अर्थ अर्थात् लक्ष्यार्थ लिया जाता है जो बहुत दिनों की रूढ़ि या परंपरा से नियत हो गया हो ।

उदा :- 'इन दोनों घरों में झगड़ा है' – इस वाक्य में 'घरों' का अर्थ 'घरों के लोग' से है न कि घरों की इमारतें या अन्य वस्तुएँ । ऐसे कहने की परंपरागत रूढ़ि चली आती है ।

२. **प्रयोजनवती लक्षणा :-** प्रयोजनवती लक्षणा वहाँ होती है जहाँ किसी शब्द का नियत अर्थ न लेकर उससे भिन्न अर्थ या लक्ष्यार्थ, किसी विशेष प्रयोजन से लिया जाता है, अर्थात् जो अर्थ लिया जाता है यह किसी प्रयोजन या अभिप्राय को व्यंजित करने के लिए होता है ।

उदा :- 'उस गाँव में हर साल मलेरिया क्यों न फैले ? वह तो बिल्कुल पानी में बसा है' – इस वाक्य में गाँव को पानी में बसनेवाला कहा गया है । यदि अभिधा से उसका वाच्यार्थ लिया जायेगा तो अनर्थ हो जाएगा क्योंकि गाँव पानी के अन्दर या ऊपर नहीं बसता । इसका अभिप्राय यह है कि गाँव पानी के बिल्कुल निकट बसा है या यह ऐसी जगह पर बसा है जहाँ आसपास सदा पानी भरा रहता है । वक्ता उसमें 'सीढ़ की अधिकता' व्यंजित करना चाहता है । इस प्रकार लक्ष्यार्थ लेने का विशेष प्रयोजन या उद्देश्य है ।

प्रयोजनवाती लक्षण के दो भेद हैं –

(क) गौणी लक्षणा

इसमें सादृश्य अर्थात् समान गुण द्वारा लक्ष्यार्थ का ज्ञान होता है । जैसे, 'पुरुष सिंह है' – यहाँ सिंह के समान गुण वाले पराक्रमी, शौर्यवाला पुरुष की बोध होता है । गौणी लक्षणा के दो भेद होते हैं ।

१) **सारोपा :-** इसमें उपमेय और उपमान दोनों रहते हैं । जैसे 'पुरुष सिंह दोऊ वीर हरषि चले मुनि भय हरन' । यहाँ उपमेय (पुरुष, दोऊ वीर) और उपमान (सिंह) दोनों हैं ।

२) **साध्यवसाना :-** इसमें उपमेय का कथन नहीं होता, केवल उपमान का कथन होता है । जैसे – 'अब सिंह अखाड़े में उतरा' – इसमें उपमेय (पहलवान) का नहीं हुआ है । केवल उपमान (सिंह) कहा गया है ।

(ख) शुद्ध लक्षणा

शुद्ध लक्षणा में सादृश्य संबन्ध के अतिरिक्त किसी अन्य संबन्ध से लक्ष्यार्थ का ज्ञान होता है । जैसे – 'पानी में घर है' – इसमें लक्ष्यार्थ अर्थात् पानी के तट पर घर है, इस बात का बोध, पानी

और घर के सादृश्य से नहीं होता, प्रत्युत दोनों के नैकट्य से होता है । इसलिए यहाँ शुद्ध लक्षणा है । शुद्ध लक्षणा के दो भेद हैं ।

१) लक्षण लक्षणा :- इसमें लक्ष्यार्थ के साथ वाच्यार्थ का कुछ भी लगाव नहीं होता । वाच्यार्थ पूर्णतया छूट जाता है और वह केवल लक्ष्यार्थ की सूचना देता है ।

उदा :- 'उस घर के लोग आये दिन मलेरिया में क्यों न पीड़ित हों, क्योंकि वह तो पानी में है ।' यहाँ वाच्यार्थ 'पानी में' को छोड़कर इसका तात्पर्य लिया जायेगा 'पानी के तट पर' । अतः इसमें 'तट' रूप वस्तु (अर्थात् लक्ष्यार्थ) से 'जल-धारा' रूप वस्तु (अर्थात् वाच्यार्थ) का बिलकुल लगाव नहीं है ।

२) उपादान लक्षणा :- इसमें लक्ष्यार्थ के साथ वाच्यार्थ अंग रूप में अन्वित होता है अर्थात् लगा होता है ।

उदा :- 'लाल पगड़ी के आते ही भीड़ छँट गई' । 'लाल पगड़ी' चल नहींसकती । इससे इसका वाच्यार्थ न लेकर लक्ष्यार्थ लेना होगा । लक्षणा से इसका अर्थ पुलिस का सिपाही हुआ । उत्तर प्रदेश में पुलिस के सिपाही के साथ, अंग रूपसे, 'लाल पगड़ी' लगी रहती है । इससे इसमें उपादान या अजहत् स्वार्था लक्षणा होगी ।

व्यंजना के भेद

व्यंजना के दो भेद होते हैं ।

(१) शाब्दी

जहाँ व्यंग्यार्थ किसी विशेष शब्द के प्रयोग पर ही निर्भर रहता है वहाँ शाब्दी व्यंजन होती है । उस शब्द के स्थान पर उसका पर्याय रख देने से व्यंजना नहीं रह जाती । शाब्दी व्यंजना केवल अनेकार्थक शब्दों में होती है ।

चिर जीवौ जोरी जुरैं क्यों न सनेह गंभीर
को घटि ? ये वृषभानुजा की हलधर के वीर (बिहारी)

इसमें वास्तव में कोई गोपी श्रीकृष्ण और से संबन्ध की उपयुक्तता व्यंग्य से सूचित करती है । पर, 'वृषभानुजा' और 'हलधर के वीर' – उनके क्रमशः वृषभ अनुजा (बैल की बहन, अर्थात् गाय) और हलधर (बैल) के वीर (भाई, अर्थात् बैल) – इन दो अर्थों की ओर ध्यान जाने से सखी का छिपा हुआ परिहास भी व्यंजित होता है ।

(२) आर्थी व्यंजना

जहाँ व्यंजना किसी शब्द विशेष पर अवलम्बित न हो अर्थात् उसका पर्याय रखने पर भी बने रहे, वहाँ आर्थी व्यंजना होती है ।

आर्थी व्यंजना के दो भेद होते हैं – (क) लक्षणामूला, (ख) अभिधामूला

(क) जिस व्यंजना में लक्ष्यार्थ के उपरान्त व्यंग्यार्थ पर पहुँचा जाता है, वह लक्षणामूला कहलाती है – जैसे ‘मनुष्य नहीं, बैल है’ ।

(ख) जिस व्यंजना में वाच्यार्थ से एकबारी व्यंग्यार्थ पर पहुँचते हैं वह अभिधामूला कहलाती है । जैसे लंका में सीता का पता लगा आने के पश्चात् हनुमान श्रीराम से सीता की दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं –

तुम्हारे विरह भई गति जैन,
चित्त दें सुनहू, राम करुनानिधि, जानै कछु, पै सकौं
कहि हौं न ?

यहाँ ‘जानो कछु, पै सकौं कहि हौं न’ इसके वाच्यार्थ से ही इससे व्यंजित व्यंग्यार्थ अर्थात् ‘सीता के विरह के आधिक्य’ पर पहुँच हो जाती है ।

.....